सहजानंद शास्त्रमाला

द्रव्य संग्रह

तृतीय भाग

गाथा 28-38

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

प्रकाशकीय

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्यवर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरूतर कार्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक **'द्रव्य संग्रह तृतीय भाग'** अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्रीमनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यवहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक को शीघ्र ग्राह्य हो जाती है।

ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सके इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को http://www.sahjanandvarnishastra.org/ वेबसाइड पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थको पुन: प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कंप्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे । इसी ग्रन्थ की PDF फाइल www.jainkosh.org पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में **श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर** इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। ग्रन्थ के टंकण कार्य में **श्रीमती मनोरमाजी, गांधीनगर** एवं प्रूफिंग करने हेतु श्री **सुरेशजी पांड्या, इन्दौर** का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

विकास छाबड़ा

53, मल्हारगंज मेनरोड़

इन्दौर (म०प्र०)

Phone:94066-82889

Email-vikasnd@gmail.com

www.jainkosh.org

Contents

गाथा २८ 4
गाथा २९ 6
गाथा ३० 8
गाथा ३१ 19
गाथा ३२ 40
गाथा ३३ 42
गाथा ३४ 47
गाथा ३५ 60
गाथा ३६ 99
गाथा ३७ 101
गाथा ३८ 103

तृतीय अधिकार

गाथा २८

आस्रवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ।।२८।।

अन्वय—जीवाजीवविसेसा जे सपुण्णपावा आसवबंधणसंवरणिज्जरमोक्खो तेवि समासेण पभणामो ।

अर्थ—जीव और अजीव के विशेष (भेद) जो पुण्य, पाप, प्रासव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष हैं उनको भी संक्षेप से कहते हैं—

प्रश्न १-—ये आस्रवादिक जीव अजीव के क्या द्रव्यार्थिक दृष्टि से भेद हैं?

उत्तर—ये आस्रवादिक जीव और अजीव के पर्याय हैं । इसी कारण ये सातों दो-दो प्रकार के हो जाते हैं—(१) जीवपुण्य, (२) अजीवपुण्य । (१) जीवपाप, (२) अजीवपाप । (१) जीवास्रव, (२) अजीवास्रव । (१) जीवबंध, (२) अजीवाबंध । (१) जीवसंवर, (२) अजीवसंवर । (१) जीवनिर्जरा, (२) अजीवनिर्जरा । (१) जीवमोक्ष, (२) अजीवमोक्ष ।

प्रश्न २—इनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—इन सब विशेषों का स्वरूप विशेषरूप से आगे गाथावों में कहा जायेगा । इनका सामान्यस्वरूप यहाँ जान लेना चाहिये ।

प्रश्न ३—पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर—शुभ आस्रव को पुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ४—पाप किसे कहते हैं?

उत्तर—अशुभ आस्रव को पाप कहते हैं ।

प्रश्न ५—आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर—बाह्य तत्त्व के आने को आस्रव कहते हैं ।

प्रश्न ६—बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—बंधने को बन्ध कहते हैं ।

प्रश्न ७—संवर किसे कहते हैं?

उत्तर—बाह्य तत्त्व का आना रुक जाना संवर है ।

प्रश्न ८—निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर—बाह्य तत्त्व के झड़ जाने को निर्जरा कहते हैं ।

प्रश्न ९—मोक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर—बाह्य तत्त्व के बिल्कुल छूट जाने को मोक्ष कहते हैं ।

प्रश्न १०—क्या जीवविशेष और अजीवविशेष बिल्कुल स्वतन्त्र हैं?

उत्तर—ये जीव के विशेष अजीव के विशेष के निमित्त से हैं और ये अजीव के विशेष जीव के विशेष के निमित्त से हैं ।

अब उक्त विशेषों में से जीवास्रव और अजीवास्रव का स्वरूप कहते हैं—

गाथा २९

आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।

भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ।।२९।।

अन्वय—अप्पणो जेण परिणामेण कम्मं आसवदि स जिणुत्तो भावासवो विण्णेयो, कम्मासवणं परो होदि ।

अर्थ-—आत्मा के जिस परिणाम से कर्म आता है वह जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिये और जो कर्मों का आना है उसे द्रव्यास्रव जानना चाहिये ।

प्रश्न १—किन परिणामों से कर्म आते हैं?

उत्तर-—शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रय के विपरीत जो भी परिणाम हैं वे पुद्गल कर्मों के आस्रव के निमित्त कारण हैं ।

प्रश्न २—वे विपरीत परिणाम कौन हैं जिनके निमित्त से कर्मों का आस्रव होता है?

उत्तर—पांच इन्द्रियां के विषय भोगने के परिणाम क्रोध, मान, माया, मात्सर्य, लोभ, परवस्तु को अपना मानने का भाव, परपदार्थों के जानने का लक्ष्य आदि विपरीत परिणाम हैं ।

प्रश्न ३—जीवास्रव किसे कहते हैं?

उत्तर—भावास्रव जीवास्रव का ही अपर नाम है । जिन भावों का नाम भावास्रव है वे जीव के ही परिणमन हैं, अत: ये जीवास्रव कहलाते हैं अर्थात् आत्मा के जिन परिणामो से कर्म आते हैं उन्हें भावास्रव या जीवास्रव कहते हैं ।

प्रश्न ४—आत्मा में भावास्रव क्यों होते हैं?

उत्तर—पूर्वबद्ध कर्मों के उदय को निमित्त पाकर आत्मा में भावास्रव होते हैं ।

प्रश्न ५—भावास्रव और द्रव्यास्रव में कारण कौन हैं और कार्य कौन हैं?

उत्तर—वर्तमान भावास्रव नवीन द्रव्यास्रव का कारण है, नवीन द्रव्यास्रव का वर्तमान भावास्रव का कार्य है ।

प्रश्न ६—वर्तमान भावास्रव का कारण कौन है?

उत्तर—वर्तमान भावास्रव का परम्परा कारण पूर्व का द्रव्यास्रव है ।

प्रश्न ७—एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ कार्यकारण भाव कैसे हो सकता हे?

उत्तर—जीवास्रव (भावास्रव) जीव का परिणमन है । अजीवास्रव (द्रव्यास्रव) अजीव का परिणमन है, इस कारण इन दोनों में निश्चय से कार्यकारण भाव नहीं है, किन्तु निमित्तदृष्टि का कार्यकारण भाव है ।

प्रश्न ८—द्रव्यास्रव किसे कहते हैं?

उत्तर—अकर्मत्वरूप कार्माणवर्गणावों को कर्मस्वरूप होने को द्रव्यास्रव कहते हैं ।

प्रश्न ९—अजीवास्रव किसे कहते हैं?

उत्तर—द्रव्यास्रव का ही अपर नाम अजीवास्रव है । द्रव्यास्रव अजीव कार्माणवर्गणाओं का परिणमन है, अतः यह अजीवास्रव है ।

प्रश्न १०—भावास्रव के स्वरूप में कहे हुए "कम्मं आसवदि" से द्रव्यास्रव का स्वरूप जान लिया जाता है, फिर द्रव्यास्रव का स्वरूप पृथक् क्यों कहा है?

उत्तर—यत् तत् शब्द से जिसका ग्रहण हो उसी का वर्णन होता है । यहाँ "कम्मं आसवदि" शब्द भावास्रव की सामर्थ्य बताने को कहा ।

प्रश्न ११—भावास्रव और द्रव्यास्रव के लक्षण जानने से लाभ क्या है?

उत्तर—यदि भूतार्थनय से भावास्रव व द्रव्यास्रव को समझा जाये तो सम्यग्दर्शन का लाभ होता है ।

प्रश्न १२—भूतार्थनय से थे आस्रव कैसे जाने जाते हैं?

उत्तर—इस तत्त्व को अगली गाथा के प्रश्नोत्तरों में कहा जायेगा, जिस अगली गाथा में भावास्रव व द्रव्यास्रव का स्वरूप बताया है ।

अब भावास्रव का स्वरूप विशेषता से कहते हैं—

गाथा ३०

मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधावओऽथ विण्णेया ।

पण पण पणदस तिय चहु कमसो भेद हु पुव्वस्स ।।३०।।

अन्वय—अथ पुव्वस मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोधादओ विण्णेया । हु कमसो पण पण पणदस तिय चहु भेदा ।

अर्थ—अब पूर्व के याने भावास्रव के मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय, ये विशेष जानने चाहियें और उनके क्रम से ५, ५, १५, ३ और ४ भेद भी जानने चाहिये ।

प्रश्न १—मिथ्यात्वादिक भावास्रव के भेद है या पर्याय?

उत्तर—भावास्रव स्वयं पर्याय है । मिथ्यात्वादिक भावास्रव के प्रकार (भेद) हैं । भावास्रव कितने तरह के होते हैं, इसका इसमें उत्तर है ।

प्रश्न २—मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रतिकूल अभिप्राय होने व अन्य शुद्ध द्रव्यों के प्रतिकूल अभिप्राय होने को मिथ्यात्व कहते हैं ।

प्रश्न ३—मिथ्यात्व के ५ भेद कौन-कौन से हैं?

उत्तर—मिथ्यात्व के ५ भेद ये है—(१) एकान्तमिथ्यात्व, (२) विपरीतमिथ्यात्व, (३) संशयमिथ्यात्व, (४) विनयमिथ्यात्व और (५) अज्ञानमिथ्यात्व ।

प्रश्न ४—एकान्तमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—अनन्तधर्मात्मक वस्तु में एक ही धर्म मानने के हठ या अभिप्राय को एकान्तमिथ्यात्व कहते हैं ।

प्रश्न ५—विपरीतमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—वस्तुस्वरूप के बिल्कुल विरुद्ध तत्त्वरूप वस्तु को मानना विपरीतमिथ्यात्व है ।

प्रश्न ६—संशयमिथ्यात्व किसे कहते है?

उत्तर—वस्तुस्वरूप में ''यह इस भांति है अथवा इस भाँति'' इत्यादि रूप से संशय करने को संशयमिथ्यात्व कहते हैं ।

प्रश्न ७—विनयमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—देव-कुदेव, शास्त्र-कुशास्त्र, गुरु-कुगुरु आदि का विचार किये बिना सबको समान भाव से मानना, विनय करना विनयमिथ्यात्व है ।

प्रश्न ८—अज्ञानमिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उत्तर—वस्तुस्वरूप का कुछ भी ज्ञान नहीं होना, हित-अहित का विवेक न होना अज्ञानमिथ्यात्व है ।

प्रश्न ९—अविरति किसे कहते है?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रय से उत्पन्न होने वाले सहज आनन्द की रति न होने व पापकार्यों में प्रवृत्त होने को या पापकार्यों से विरत न होने को अविरति कहते हैं ।

प्रश्न १०—अविरति के कितने भेद हैं?

उत्तर—अविरति के सामान्यतया ५ भेद हैं और विशेषता १२ भेद हैं ।

प्रश्न ११—अविरति के ५ भेद कौन-कौन से हैं?

उत्तर—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहेच्छा—ये ५ अविरति के भेद हैं ।

प्रश्न १२—हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर—कषाय के द्वारा अपने व पर के प्राणों के घात करने को हिंसा कहते हैं ।

प्रश्न १३—पर के घात में अपनी हिंसा तो नहीं होती होगी?

उत्तर—कषायवश दूसरों के घात करने में अपनी हिंसा तो सुनिश्चित ही है । दूसरों के घात का उद्यम भी किया जावे और उससे परजीव का चाहे घात न भी हो तो भी निजहिंसा तो ही हो जाती है ।

प्रश्न १४—मरण से अतिरिक्त भी कोई हिंसा है?

उत्तर—निज हिंसा तो वास्तव में कषायों का होना है, इससे अपने चैतन्य प्राण का घात होता है । पर हिंसा चित्त दुखाना, संक्लेश कराना आदि भी है ।

प्रश्न १५—हिंसा के कितने भेद हैं?

उत्तर—हिंसा के ४ भेद हैं—(१) संकल्पी हिंसा, (२) उद्यमी हिंसा, (३) आरम्भी हिंसा, (४) विरोधी हिंसा ।

प्रश्न १६—संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर—इरादतन किसी जीव के घात करने को संकल्पी हिंसा कहते हैं ।

प्रश्न १७—उद्यमी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर—सावधानी सहित व्यापार करते हुये भी जो हिंसा होती है वह उद्यमी हिंसा है ।

प्रश्न १८—आरम्भी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर—रसोई आदि गृह के आरम्भों को सावधानी से यत्नाचारपूर्वक करते हुये भी जो हिंसा हो जाती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं ।

प्रश्न १९—विरोधी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी आक्रामक मनुष्य या तिर्यञ्च के द्वारा धन, जन, शील आदि के नाश का प्रसङ्ग आने पर रक्षा के लिये उसके साथ प्रत्याक्रमण करने पर जो हिंसा हो जाती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं ।

प्रश्न २०—सुना है कि गृहस्थ के केवल संकल्पी हिंसा की हिंसा लगती है, शेष तीन हिंसायें नहीं लगती?

उत्तर—हिंसा तो जो करेगा उसे सभी लगती हैं, किन्तु गृहस्थ अभी संकल्पी हिंसा का ही त्याग कर

पाया है, शेष हिंसावों का त्याग नहीं कर सका है ।

प्रश्न २१—झूठ किसे कहते हैं?

उत्तर—कषायवश असत्यसंभाषण करने को झूठ कहते हैं ।

प्रश्न २२—चोरी किसे कहते हैं?

उत्तर—कषायवश दूसरों की चीज छुपकर अथवा ज्यादती करके हर लेने को चोरी कहते हैं ।

प्रश्न २३—कुशील किसे कहते हैं?

उत्तर—ब्रह्मचर्य के घात करने को कुशील कहते हैं ।

प्रश्न २४—निज स्त्री के सिवाय शेष अन्य परस्त्री, वेश्यारमण के त्याग करने को तो शील कहते होगे?

उत्तर—वस्तुत: तो निजस्त्रीसेवन भी कुशील है, किन्तु परस्त्री, वेश्या आदि अन्य सब कुशीलों के त्याग हो जाने से स्वस्त्रीरमण होकर भी उस जीव के शील कहने का व्यवहार है ।

प्रश्न २५—परिग्रहेच्छा किसे कहते हैं?

उत्तर—बाह्य अर्थों की इच्छा करने को याने मूर्च्छा को परिग्रहेच्छा कहते हैं ।

प्रश्न २६-—परिग्रह कितने प्रकार के हैं?

उत्तर-परिग्रह दो प्रकार के है—(१) आभ्यंतर और (२) बाह्य ।

प्रश्न २७—आभ्यन्तरपरिग्रह किसे कहते हैं?

उत्तर—जो आत्मा का ही परिणमन हो, किन्तु स्वभावरूप न हो, विकृत हो उसे आभ्यंतरपरिग्रह कहते हैं ।

प्रश्न २८—आभ्यन्तरपरिग्रह कितने प्रकार के हैं?

उत्तर-—आभ्यन्तरपरिग्रह १४ प्रकार के हैं—(१) मोह, (२) क्रोध, (३) मान, (४) माया, (५) लोभ, (६) हास्य, (७) रति (८) अरति, (९) शोक, (१०) भय, (११) जुगुप्सा, (१२) पुरुषवेद, (१३) स्त्रीवेद, (१४) नपुंसकवेद ।

प्रश्न २९—बाह्यपरिग्रह की कितनी जातियां हैं?

उत्तर—बाह्यपरिग्रह की दस जातियाँ हैं—(१) क्षेत्र याने खेत, (२) वस्तु याने मकान, (३) हिरण्य याने चांदी, (४) सुवर्ण याने सोना, (५) धन—गाय, भैंस आदि पशु । (६) धान्य याने अन्न, (७) दासी याने नौकरानी, (८) दास याने नौकर, (९) कुप्य याने वस्त्रादि, (१०) भाण्ड याने बर्तन ।

प्रश्न ३०-—आभ्यन्तरपरिग्रह की इच्छा क्या होती है?

उत्तर-—कषाय में रुचना, कषाय में बसना आदि आभ्यंतर परिग्रहेच्छा है ।

प्रश्न ३१-—अविरति के १२ भेद कौन से हैं?

उत्तर—कायअविरति ६ और विषयअविरति ६, इस प्रकार अविरति के १२ भेद हैं ।

प्रश्न ३२—कायअविरति के भेद कौन से हैं?

उत्तर—पृथ्वीकायअविरति, जलकायअविरति, अग्निकायअविरति, वायुकायअविरति, वनस्पतिकायअविरति और त्रसकायअविरति—ये ६ भेद कायअविरति के हैं ।

प्रश्न ३३—पृथ्वीकायअविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—पृथ्वीकायिक जीवों की विराधना का त्याग न करना और खोदना, कूटना, फोड़ना, दाबना आदि प्रवृत्तियों से उनकी विराधना करने को पृथ्वीकायअविरति कहते हैं ।

प्रश्न ३४—जलकायअविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—जलकायिक जीवों की विराधना का त्याग न करना और विलोरना, तपाना, गिराना, हिलाना आदि प्रवृत्तियों से उनकी विराधना करने को जलकायअविरति कहते हैं ।

प्रश्न ३५—अग्निकायअविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—अग्निकायिक जीवों की विराधना का त्याग न करना और बुझाना, खुदेरना, बन्द करना आदि प्रवृत्तियों से उनकी विराधना करने को अग्निकायअविरति कहते हैं ।

प्रश्न ३६—वायुकायअविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—वायुकायिक जीवों की विराधना का त्याग न करना और पंखा चलाना, रबड़ आदि में बन्द करना आदि प्रवृत्तियों से उनकी विराधना करने को वायुकायिकअविरति कहते हैं ।

प्रश्न ३७—वनस्पतिकायिक अविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—वनस्पतिकायिक जीवों को विराधना का त्याग न करना और छेदना, काटना, पकाना, सुखाना आदि प्रवृत्तियों से उनकी विराधना करने को वनस्पतिकायअविरति कहते हैं ।

प्रश्न ३८—त्रसकायअविरति किसे कहते हें?

उत्तर—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों की विराधना का त्याग न करना और पीटना, दलना, मलना, मारना, चित्त दुखाना आदि प्रवृत्तियों से उनकी विराधना करना, सो त्रसकायअविरति है ।

प्रश्न ३९—विषयअविरति के भेद कौन-कौन हैं?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रियविषय अविरति, रसनेन्द्रियविषय अविरति, घ्राणेन्द्रियविषय अविरति, चक्षुरिन्द्रियविषय अविरति, श्रोत्रेन्द्रियविषय अविरति और मनोविषय अविरति-—ये ६ भेद विषय अविरति के हैं ।

प्रश्न ४०-—स्पर्शनेन्द्रिय विषयविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रिय के विषयों से विरक्त नहीं होने और शीतस्पर्शन, उष्णस्पर्शन, कोमलस्पर्शन, मैथुन आदि क्रियाओं से स्पर्शनेन्द्रिय के विषय में प्रवृत्ति करने को स्पर्शनेन्द्रियविषय अविरति कहते हैं ।

प्रश्न ४१—रसनेन्द्रिय विषयाविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—रसनाइन्द्रिय के विषयों से विरक्त न होने व मधुर नाना व्यञ्जन रसों के भक्षण पान की प्रवृत्ति करने को रसनेन्द्रियविषय अविरति कहते हैं ।

प्रश्न ४२—घ्राणेन्द्रियविषय अविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—घ्राणेन्द्रिय (नासिका) के विषयों से विरक्त न होने व सुहावने सुगन्धित पुष्प, इतर आदि के सूंघने को घ्राणेन्द्रियविषय अविरति कहते हैं ।

प्रश्न ४३-—चक्षुरिन्द्रियविषय अविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—चक्षुरिन्द्रिय (नेत्र) के विषयों से विरक्त न होने व सुन्दर रूप, खेल, नाटक आदि देखने की प्रवृत्ति करने को चक्षुरिन्द्रिय विषयाविरति कहते हैं ।

प्रश्न ४४—श्रोत्रेरिन्द्रियविषयाविरति किसे कहते हैं?

उत्तर—श्रोत्रेन्द्रिय के विषयों से विरक्त न होने, सुहावने राग भरे शब्द, संगीत आदि के सुनने की रति को श्रोत्रेन्द्रिय विषयाविरति कहते हैं ।

प्रश्न ४५—मनोविषय अविरति किसे कहते है?

उत्तर—मन के विषयों से विरक्त न होने व यश, कीर्ति, विषयचिन्तन आदि विषयों में होने को मनोविषय अविरति कहते हैं ।

प्रश्न ४६—इन्द्रिय व मन के अनिष्ट विषयों में अरति या द्वेष करने को क्या अविरति नहीं कहते हैं?

उत्तर—अनिष्ट विषयों में द्वेष करने को भी अविरति कहते हैं । यह द्वेष मी इष्ट विषयों में रति होने के कारण होता है, अत: इसका भी अंतर्भाव पूर्वोक्त लक्षणों में हो जाता है ।

प्रश्न ४७—प्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर—शुद्धात्मानुभव से चलित हो जाने व व्रतसाधन में असावधानी करने को प्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ४८—प्रमाद के कितने भेद हैं?

उत्तर—प्रमाद के मूल भेद १५ हैं—(१) स्त्रीकथा, (२) देशकथा, (३) भोजनकथा, (४) राजकथा ये चार विकथायें, (५) क्रोध, (६) मान, (७) माया, (८) लोभ ये चार कथायें, (९) स्पर्शनेन्द्रियवशता, (१०) रसनेन्द्रियवशता, (११) घ्राणेन्द्रियवशता, (१२) चक्षुरिन्द्रियवशता, (१३) श्रोत्रेन्द्रियवशता ये पांच इन्द्रियवशता तथा (१४) निद्रा व (१५) स्नेह ।

प्रश्न ४९—स्त्रीकथा किसे कहते है?

उत्तर—स्त्री के सुन्दर रूप, कला, चातुर्य आदि की रागभरी कथा करने को स्त्रीकथा कहते हैं ।

प्रश्न ५०—देशकथा किसे कहते हैं?

उत्तर—देश विदेशों के स्थान, महल, चाल-चलन, नीति आदि की बातें करने को देशकथा कहते हैं ।

प्रश्न ५१—भोजनकथा किसे कहते हैं?

उत्तर—स्वादिष्ट भोजन का स्वाद, भोजन बनाने की किया, भोजन की सामग्री आदि की चर्चा करने को भोजनकथा कहते हैं ।

प्रश्न ५२—राजकथा किसे कहते हैं?

उत्तर—राजावों के व्यवहार, वैभव आदि की चर्चा करने को राजकथा कहते हैं ।

प्रश्न ५३—क्रोधप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर—क्रोधवश शुद्धात्मानुभव से चलित होने व आवश्यक कर्तव्यों में शिथिलता करने को क्रोधप्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ५४—मानप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर-—मानवश शुद्धात्मानुभव से चलित होने व आवश्यक कर्तव्यों में शिथिल होने को व दोष लगाने को मानप्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ५५—मायाप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर-—मायावश शुद्धात्मानुभव से चलित होने व आवश्यक कर्तव्यों में दोष लगाने को मायाप्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ५६-—लोभप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर-—लोभकषायवश शुद्धात्मानुभव से चलित होने व आवश्यक कर्तव्यों में दोष लगाने को लोभप्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ५७—स्पर्शनेन्द्रियवशता किसे कहते हैं?

उत्तर—स्पर्शनेन्द्रिय के विषयों के चिन्तवन, प्रवर्तन आदि के आधीन होकर शुद्धात्मानुभव से चलित होना स्पर्शनेन्द्रियवशता है ।

प्रश्न ५८—रसनेन्द्रियवशता क्या है?

उत्तर-—भोजन के स्वाद में रति करके शुद्धात्मानुभव से चलित हो जाना, सो रसनेन्द्रियवशता है ।

प्रश्न ५९-—घ्राणेन्द्रियवशता किसे कहते हैं?

उत्तर—अच्छे गन्ध वाले पदार्थों की गन्ध की वाञ्छा व वृत्ति करके शुद्धात्मानुभव से चलित हो जाना घ्राणेन्द्रियवशता है ।

प्रश्न ६०—चक्षुरिन्द्रियवशता किसे कहते हैं?

उत्तर-—सुन्दर रूप, नाटक, कला आदि के देखने में रति करके शुद्धात्मानुभव से चलित हो जाने को चक्षुरिन्द्रियवशता कहते हैं ।

प्रश्न ६१—श्रोत्रेन्द्रियवशता किसे कहते हैं?

उत्तर—रागोत्पादक शब्द, संगीत आदि के श्रवण में रति करके शुद्धात्मानुभव से चलित हो जाने को श्रोत्रेन्द्रियवशता कहते हैं ।

प्रश्न ६२—निद्राप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर—निद्रा के अंश के भी वशीभूत होकर शुद्धात्मानुभव से चलित हो जाने को निद्राप्रमाद कहते हैं ।

प्रश्न ६३—स्नेहप्रमाद किसे कहते हैं?

उत्तर-—किसी पदार्थ या प्राणीविषयक स्नेह करके शुद्ध स्वरूपानुभव से चलित हो जाने को स्नेहप्रमाद

कहते हैं ।

प्रश्न ६४—प्रमाद के संयोगी भेद कितने हैं?

उत्तर—प्रमाद के संयोगी भेद ८० होते हैं—४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रियविषय-—इनका परस्पर गुणा करने से ८० भेद हो जाते हैं । इन सब भेदों के साथ निद्रा व स्नेह लगाते जाना चाहिये ।

प्रश्न ६५—कषाय के कितने भेद हैं?

उत्तर—कषाय के मूल भेद ४ है—(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ ।

प्रश्न ६६—कषाय के उत्तरभेद कितने हैं?

उत्तर—कषाय के उत्तरभेद २५ हैं—(१-४) अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, (५-८) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (९-१२) प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान, माया, लोभ, (१३-१६) संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, (१७) हास्य, (१८) रति, (१९) अरति, (२०) शोक, (२१) भय, (२२) जुगुप्सा, (२३) पुरुषवेद, (२४) स्त्रीवेद और (२५) नपुँसकवेद ।

प्रश्न ६७—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्व को बढ़ावे उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ६८—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ देशसंयम का घात करे याने देशसंयम को प्रकट न होने दे उसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ६९—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ किसे कहते हैं?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ सकलसंयम का घात करे याने सकलसंयम को प्रकट न होने दे उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ७०—संज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ किसे कहते हैं?

उत्तर—जो क्रोध, मान, माया, लोभ यथाख्यात चारित्र (कषाय के अभाव में होने वाला चारित्र) को घाते याने यथाख्यात चारित्र को प्रकट न होने दे उसे संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ कहते हैं ।

प्रश्न ७१—हास्य किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी की किसी बात की कमी देखकर हास्य मजाक करने व लौकिक सुख पाकर हंसने को हास्य कहते हैं ।

प्रश्न ७२—रति किसे कहते है?

उत्तर-इष्ट विषय पाकर या सोचकर उसमें प्रीति करने को रति कहते हैं ।

प्रश्न ७३—अरति किसे कहते हैं?

उत्तर—अनिष्ट विषय को पाकर या सोचकर उसमें अप्रीति करने को अरति कहते हैं ।

प्रश्न ७४—शोक किसे कहते हैं?

उत्तर—अनिष्ट प्रसङ्ग उपस्थित होने पर या उसका चिन्तवन करने पर रंज रूप परिणाम होने को शोक कहते हैं ।

प्रश्न ७५—भय किसे कहते हैं?

उत्तर—अपनी कल्पनानुसार जिसे अहित माना है । उससे शङ्का करने या डरने को भय कहते हैं ।

प्रश्न ७६—जुगुप्सा किसे कहते हैं?

उत्तर—अरुचिकर विषयों में ग्लानि करने को जुगुप्सा कहते हैं ।

प्रश्न ७७—पुरुषवेद किसे कहते हैं?

उत्तर—आत्मीय गुण, पुरुषार्थ के विकास में उत्साह व यत्न करने को पुरुषवेद कहते हैं अथवा स्त्री के साथ रमण करने के अभिलाष परिणाम को पुरुषवेद कहते हैं ।

प्रश्न ७८—स्त्रीवेद किसे कहते हैं?

उत्तर—मायाचार की मुख्यता, पुरुषार्थ में निरुत्साह, भयशीलता आदिक परिणाम को अथवा पुरुष के साथ रमण करने के अभिलाष परिणाम को स्त्रीवेद कहते हैं ।

प्रश्न ७९—नपुंसकवेद किसे कहते है?

उत्तर—कायरता व कर्तव्य में निरुत्साह आदि परिणाम को अथवा पुरुष व स्त्री दोनों के साथ रमण करने के परिणाम को नपुंसकवेद कहते हैं ।

प्रश्न ८०—योग किसे कहते हैं?

उत्तर—मन, वचन, काय के निमित्त से आत्मप्रदेश के परिस्पंद होने के कारणभूत प्रयत्न को योग कहते हैं ।

प्रश्न ८१—योग के कितने भेद हैं?

उत्तर—योग के मूल भेद ३ हैं-—(१) मनोयोग, (२) वचनयोग, (३) काययोग । योग के उत्तर भेद १५ हैं—(१) सत्यमनोयोग, (२) असत्यमनोयोग, (३) उभयमनोयोग, (४) अनुभयमनोयोग, (५) सत्यवचनयोग, (६) असत्यवचनयोग, (७) उभयवचनयोग, (८) अनुभयवचनयोग, (९) औदारिक काययोग, (१०) औदारिक मिश्रकाययोग, (११) वैक्रियककाययोग, (१२) वैक्रियकमिश्रकाययोग, (१३) आहारककाययोग, (१४) आहारकमिश्रकाययोग, (१५) कार्माणकाययोग ।

प्रश्न ८२—सत्यमनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—सत्यवचन के कारणभूत मन को सत्यमन कहते हैं और सत्यमन के निमित्त से होने वाले योग को सत्यमनोयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८३—असत्यमनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—असत्यवचन के कारणभूत मन को असत्यमन कहते हैं और असत्य मन के निमित्त से होने वाले

योग को असत्यमनोयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८४—उभयमनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—उभय (सत्य व असत्य मिले हुये) वचन के कारणभूत मन को उभयमन कहते हैं और उभयमन के निमित्त से होने वाले योग को उभयमनयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८५-—अनुभयमनोयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—अनुभय अर्थात् जो न सत्य है और न असत्य, ऐसे वचन के कारणभूत मन को अनुभयमन कहते हैं और अनुभयमन के निमित्त से होने वाले योग को अनुभयमनोयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८६—सत्यवचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर-—सत्यवचन के निमित्त से होने वाले योग को सत्यवचनयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८७—असत्यवचनयोग किसे कहते है?

उत्तर—असत्य वचन के निमित्त से होने वाले योग को असत्यवचनयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८८—उभयवचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—सत्य व असत्य मिश्रित वचन के निमित्त से होने वाले योग को उभयवचनयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८९—अनुभयवचनयोग किसे कहते हैं?

उत्तर—अनुभय (जो न सत्य है और न असत्य है) वचन के निमित्त से होने वाले योग को अनुभयवचनयोग कहते हैं ।

प्रश्न ९०—दिव्यध्वनि के शब्द किस वचनरूप हैं?

उत्तर—दिव्यध्वनि के शब्द अनुभयवचन हैं और ये ही शब्द श्रोतावों के कर्ण में प्रविष्ट होने पर सत्यवचन कहलाते हैं ।

प्रश्न ९१-—द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवों के शब्द किस वचनरूप हैं?

उत्तर—द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवों के शब्द अनुभयवचनरुप हैं ।

प्रश्न ९२—संज्ञी जीवों की कौनसी भाषा अनुभयवचन रूप हैं?

उत्तर—प्रश्न, आज्ञा, निमन्त्रण आदि के शब्द अनुभयवचन कहलाते हैं ।

प्रश्न ९३—औदारिक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर—मनुष्य व तिर्यंचों के शरीर को औदारिक काय कहते हैं, उस काय के निमित्त से होने वाले योग को औदारिक काययोग कहते हैं ।

प्रश्न ९४-—औदारिक मिश्रकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—औदारिक मिश्रकाय के निमित्त से होने वाले योग को औदारिक मिश्रकाययोग कहते हैं ।

प्रश्न ९५—औदारिक मिश्रकाय कब होता है?

उत्तर—कोई जीव मरकर मनुष्य या तिर्यंचगति में जावे । वहाँ जन्मस्थान पर पहुंचते ही यह जीव

औदारिक वर्गणाओं को शरीररूप से ग्रहण करने लगता है, किन्तु जब तक शरीर पर्याप्ति (शरीर बनाने की शक्ति) पूर्ण नहीं हो पाती है तब तक उस शरीर को औदारिक मिश्रकाय कहते हैं । इस अपर्याप्त अवस्थान में कार्माणवर्गणा और औदारिक वर्गणा दोनों का सम्मिलित ग्रहण है ।

प्रश्न ९६—वैक्रियककाययोग किसे कहते हैं?

उत्तर—देव व नारकियों के शरीर को वैक्रियककाय कहते हैं, उसके निमित्त से होने वाले योग को वैक्रियककाययोग कहते हैं ।

प्रश्न ९७—वैक्रियकमिश्रकाययोग किसे कहते हैं?

उत्तर—वैक्रियकमिश्रकाय के निमित्त से होने वाले योग को वैक्रियकमिश्रकाययोग कहते हैं ।

प्रश्न ९८—वैक्रियकमिश्रकाय कब होता है?

उत्तर—कोई मनुष्य या तिर्यञ्च मरकर देव या नरकगति में जाये । वहाँ जन्मस्थान पर पहुंचते ही जीव वैक्रियक वर्गणाओं को शरीर रूप से ग्रहण करने लगता है । किन्तु जब तक शरीर पर्याप्ति (शरीर रचना होने की शक्ति) पूर्ण नहीं हो पाती तब तक इस शरीर को वैक्रियक मिश्रकाय कहते हैं । इस अपर्याप्ति अवस्था में कार्माणवर्गणा और वैक्रियकवर्गणा—इन दोनों का सम्मिलित ग्रहण है ।

प्रश्न ९९—आहारककाययोग किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रमत्तविरत (छठे) गुणस्थानवर्ती आहारकऋद्धिधारी मुनि के जब कोई सूक्ष्म तत्त्व में शंका उत्पन्न होती है तब उनके मस्तक से एक हाथ का, धवल, पवित्र, अव्याघाती आहारक शरीर निकलता है, । यह पुतला केवली या श्रुतकेवली के दर्शन करके वापिस मस्तक में समा जाता है । उस समय मुनि की शंका निवृत्त हो जाती है । इस आहारक शरीर के निमित्त से जो योग होता है उसे आहारककाययोग कहते हैं ।

प्रश्न १००—आहारकमिश्रकाययोग किसे कहते हैं?

उत्तर—यह आहारकशरीर जब तक पूर्ण बन नहीं लेता तब तक आहारक मिश्रकाय कहलाता है । इस आहारकमिश्रकाय के निमित्त से होने वाले योग को आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं । इस अपर्याति अवस्थान में औदारिक वर्गणा व आहारकवर्गणा दोनों का सम्मिलित ग्रहण है ।

प्रश्न १०१—कार्माणकाययोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—कोई जीव मरकर दूसरी गति में मोड़े वाली विग्रहगति से जावे तो उसके उस रास्ते में केवल कार्माणकाय के निमित्त से होता है तथा समुद्घातकेवली के प्रतर और लोकपूरण समूद्घात में केवल कार्माणकाय के निमित्त से योग होता है । उस योग को कार्माणकाययोग कहते हैं ।

प्रश्न १०२—इन सब आस्रवों के जानने से क्या लाभ है?

उत्तर—ये सब आस्रव विभावरूप हैं, मैं मात्र चैतन्यस्वरूप हूँ । इस प्रकार अन्तर जानने से भेदविज्ञान होता है तथा भूतार्थनय से आस्रव का जानना निश्चय सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण है ।

प्रश्न १०३—भूतार्थनय किसे कहते हैं?

उत्तर-—एक के गुणपर्यायों को उस ही एक की ओर झुकते हुए उस एक में ही जानने को भूतार्थनय कहते हैं ।

प्रश्न १०४—भूतार्थनय से आस्रव का जानना किस प्रकार है?

उत्तर—ये सब आस्रव पर्यायें हैं । किस द्रव्य की हैं? जीवद्रव्य की । जीवद्रव्य के किस गुण की हैं? मिथ्यात्व तो सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण की पर्यायें हैं और योग योगशक्ति की पर्यायें हैं, शेष सब चारित्रगुण की पर्यायें हैं । इस प्रकार द्रव्य, गुण, पर्यायों को यथार्थ जानकर एकत्व की ओर उपयोग जावे, इस प्रकार जानना भूतार्थनय का जानना होता है । जैसे यह लोभ पर्याय चारित्रगुण की है, इस बोध में पर्यायदृष्टि से गौण हों जाती है और गुणदृष्टि मुख्य हो जाती है पुनः चारित्रगुण जीवद्रव्य का है, इस बोध में गुणदृष्टि गौण हो जाती है और द्रव्यदृष्टि मुख्य हो जाती है । पश्चात् द्रव्यदृष्टि में विकल्प का अवकाश न होने से द्रव्यदृष्टि भी छूटकर केवल सहज आनन्दमय परिणमन का अनुभव रह जाता है । इस शुद्ध आत्मतत्त्व की अनुभूति को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं ।

इस प्रकार भावास्रव के स्वरूप का विशेष रूप से वर्णन करके अब द्रव्यास्रव के स्वरूप का विशेष रूप से वर्णन करते हैं—

गाथा ३१

णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।

दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ।।३१।।

अन्वय—णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि स दव्वासवो अणेयभेओ णेओ जिणक्खादो ।

अर्थ—ज्ञानावरणादि कर्मरूप से परिणत होने योग्य जो पुद्गल आता है वह अनेक भेद वाला द्रव्यास्रव जानना चाहिये, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

प्रश्न १—कौन से पुद्गल कर्मरूप में परिणत होने के योग्य होते हैं?

उत्तर—कार्माणवर्गणा नामक स्कन्ध कर्मरूप से परिणत होने के योग्य होते हैं ।

प्रश्न २—कार्माणवर्गणायें कहां मौजूद रहती हैं?

उत्तर—कार्माणवर्गणायें समस्त लोक में ठसाठस व्याप्त हैं । लोक के एक-एक प्रदेश पर अनन्त कार्माणवर्गणायें हैं ।

प्रश्न ३—उन कार्माणवर्गणाओं का कर्मरूप होने से पहिले भी जीव के साथ कोई सम्बंध हैं या नहीं?

उत्तर—कुछ कार्माणवर्गणाओं का कर्मरूप होने से पहिले भी जीव के साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध रहता है, उन्हें विस्रसोपचय कहा जाता है । सभी संसारी जीवो के विस्रसोपचय बना रहता है ।

प्रश्न ४—क्या कुछ कार्माणवर्गणायें विस्रसोपचय से अलग भी है?

उत्तर—कुछ कार्माणवर्गणायें विस्रसोपचय से अलग भी हैं । ये भी कभी विस्रसोपचय में शामिल हो जाती हैं ।

प्रश्न ५—क्या विस्रसोपचय वाले स्कन्ध ही कर्मरूप परिणत होते हैं या अन्य कार्माणवर्गणायें भी कर्मरूप परिणत हो जाते हैं?

उत्तर—विस्रसोपचय के कार्माण स्कन्ध ही कर्मरूप परिणत होते हैं । अन्य कार्माणवर्गणायें भी विस्रसोपचयरूप बनकर कर्मरूप परिणत हो जाते हैं ।

प्रश्न ६—कर्म कितने प्रकार के हैं?

उत्तर—कर्म के मूल में २ प्रकार है—(१) घातियाकर्म और (२) अघातियाकर्म ।

प्रश्न ७—घातियाकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जो कर्म आत्मा के ज्ञानादि अनुजीवी गुणों के घातने में निमित्त हों उन्हें घातियाकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८—अनुजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर—भावात्मक गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं । इन गुणों के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं । ये गुण कम या अधिक नाना प्रकार के स्थानों में विकसित हो सकते हैं । जैसे ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र, शक्ति ।

प्रश्न ९—अघातियाकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म जीव के अनुजीवी गुणों का घात न करें और केवल प्रतिजीवी गुणों का विकास रुकने में निमित्त हों उन्हें अघातियाकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०—प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं?

उत्तर—अभावात्मक धर्मों को प्रतिजीवी गुण कहते हैं । इन गुणों के अविभागप्रतिच्छेद नहीं होते । जैसे अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अव्याबाध ।

प्रश्न ११—घातियाकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर—घातियाकर्म के चार भेद है—(१) ज्ञानावरणकर्म, (२) दर्शनावरणकर्म, (३) मोहनीयकर्म और अन्तरायकर्म ।

प्रश्न १२—ज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को प्रकट न होने दें अर्थात् ज्ञानगुण के अविकास में जो निमित्त हो उसे ज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३—ज्ञानावरणकर्म के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—ज्ञानावरणकर्म के ५ प्रकार हैं—(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण (४) मन:पर्ययज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण ।

प्रश्न १४—मतिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय को पाकर मतिज्ञान प्रकट न हो, उसे मतिज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५—श्रुतज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो श्रुतज्ञान को प्रकट न होने दे उसे श्रुतज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६—अवधिज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो अवधिज्ञान का आवरण करे उस कर्म को अवधिज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७—मनःपर्ययज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म मनःपर्ययज्ञान को प्रकट न होने दे, उसे मन:पर्ययज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८—केवलज्ञानावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म केवलज्ञान को प्रकट न होने दे, उसे केवलज्ञानावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९—आत्मा में यदि केवलज्ञान आदि ज्ञान हैं तो उनका आवरण हो ही नहीं सकता और यदि नहीं है तो आवरण किसका हो?

उत्तर—आत्मा में केवलज्ञान आदि शक्तिरूप से हैं, कर्म के निमित्त से वे प्रकट नहीं हो पाते, यही उनका आवरण है ।

प्रश्न २०—क्या ज्ञानावरणकर्म निश्चय से ज्ञान का घात करते हैं?

उत्तर—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का किसी प्रकार का परिणमन नहीं करता, अतः निश्चय से कर्म ज्ञान का घात नहीं करता, किन्तु ऐसा सहज ही निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है कि कर्मों के उदय होने पर आत्मज्ञानगुण का उचित विकास नहीं कर पाता । उदय भी ऐसी योग्यता वालों के होता है ।

प्रश्न २१-—दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो आत्मा के दर्शनगुण का विकास न होने दे, उसे दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २२-—दर्शनावरणकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर-—दर्शनावरणकर्म के ९ भेद हैं—(१) चक्षुर्दर्शनावरण, (२) अचक्षुर्दर्शनावरण, (३) अवधिदर्शनावरण, (४) केवलदर्शनावरण, (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचलाप्रचला, (९) स्त्यानगृद्धि ।

प्रश्न २३—चक्षुर्दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जो कर्म चक्षुर्दर्शन को न होने दे उसे चक्षुर्दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २४—अचक्षुर्दर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जो कर्म अचक्षुर्दर्शन न होने दे उसे अचक्षुर्दर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २५—अवधिदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म अवधिदर्शन न होने दे उसे अवधिदर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २६—केवलदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म केवलदर्शन को प्रकट न होने दे उसे केवलदर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २७—निद्रादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से साधारण नींद आवे, जहाँ दर्शन अथवा स्वसंवेदन न हो सके उस कर्म को निद्रादर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २८—निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से गाढ़ निद्रा आवे, बीच में जगकर भी पुनः सो जावे, जिससे दर्शन अथवा स्वसंवेदन नहीं हो सकता उसे निद्रानिद्रादर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २९—प्रचलादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अर्धनिद्रितसा सोवे, जिससे दर्शनगुण का उपयोग न हो सके उसे प्रचलादर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ३०—प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से ऐसी निद्रा आवे जहाँ अङ्ग उपाङ्ग चले, दांत किटकिटाये, मुंह से लार बहे आदि जिससे दर्शनोपयोग न हो उसे प्रचलाप्रचलादर्शनावरणकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ३१—स्त्यानगुद्धिदर्शनावरणकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से ऐसी निद्रा आवे कि निद्रा में ही उठकर कोई बड़ा काम कर आवे और

जागने पर यह मालूम भी न हो उसे स्त्यानगुद्धिदर्शनावरणनामकर्म कहते हैं । इसके उदय में भी जीव को दर्शन अथवा स्वसंवेदन नहीं हो पाता ।

प्रश्न ३२—मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अन्य तत्त्वों में मोहित हो जाये, अपने शुद्ध स्वरूप का भान न कर सके और न स्वरूप में स्थिर हो सके उसे मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ३३—मोहनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर—मोहनीयकर्म के मूल में दो भेद है—(१) दर्शनमोहनीय, (२) चारित्रमोहनीय ।

प्रश्न ३४—दर्शनमोहनीय के कितने भेद हैं?

उत्तर—दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यग्मिथ्यात्व और (३) सम्यक्प्रकृति ।

प्रश्न ३५—चारित्रमोहनीय के कितने भेद हैं?

उत्तर—चारित्रमोहनीय के २५ भेद हैं—१६ कषायवेदकमोहनीय और ९ नोकषायवेदकमोहनीय ।

प्रश्न ३६—कषायवेदकमोहनीयकर्म १६ कौन-कौन से हैं?

उत्तर—कषायवेदकमोहनीयकर्म १६ इस प्रकार है—(१) अनन्तानुबंधीक्रोधवेदकमोहनीय, (२) अनन्तानुबंधीमानवेदकमोहनीय, (३) अनन्तानुबंधीमायावेदकमोहनीय, (४) अनन्तानुबंधीलोभवेदकमोहनीय, (५) अप्रत्याख्यानावरणक्रोधवेदकमोहनीय, (६) अप्रत्याख्यानावरणमानवेदकमोहनीय, (७) अप्रत्याख्यानावरणमायावेदकमोहनीय, (८) अप्रत्याख्यानावरणलोभवेदकमोहनीय, (९) प्रत्याख्यानावरणक्रोधवेदकमोहनीय, (१०) प्रत्याख्यानावरणमानवेदकमोहनीय, (११) प्रत्याख्यानावरणमायावेदकमोहनीय, (१२) प्रत्याख्यानावरणलोभवेदकमोहनीय, (१३) संज्वलनक्रोधवेदकमोहनीय, (१४) संज्वलनमानवेदकमोहनीय, (१५) संज्वलनमायावेदकमोहनीय और (१६) संज्वलनलोभवेदकमोहनीयकर्म ।

प्रश्न ३७—नोकषायवेदकमोहनीयकर्म के ९ प्रकार कौन-कौन से हैं?

उत्तर—नोकषायवेदकमोहनीयकर्म ९ इस प्रकार हैं—(१) हास्यवेदकमोहनीय, (२) रतिवेदकमोहनीय, (३) अरतिवेदकमोहनीय, (४) शोकवेदकमोहनीय, (५) भयवेदकमोहनीय, (६) जुगुप्सावेदकमोहनीय, (७) पुरुषवेदकमोहनीय, (८) स्त्रीवेदकमोहनीय और (९) नपुँसकवेदकमोहनीय ।

प्रश्न ३८—मिथ्यात्वमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय को निमित्त पाकर आत्मा यथार्थ श्रद्धान न कर सके उसे मिथ्यात्वमोहनीयकर्म कहते हैं । इस कर्म के उदय से जीव शुद्ध निजस्वरूप का प्रत्यय नहीं कर सकता व शरीर आदि में आत्मबुद्धि करता है ।

प्रश्न ३९—सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव के न तो केवलसम्यक्त्वरूप परिणाम हों और न केवल मिथ्यात्वरूप परिणाम हों, किन्तु मिले हुए हों उस कर्म को सम्यग्मिथ्यात्वमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४०—सम्यक्प्रकृतिमोहनीयकर्म किसे कहते है?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से आत्मा के सम्यग्दर्शन में चल, मलिन, अगाढ़ दोष उत्पन्न हों उसे सम्यक्प्रकृतिमोहनीयकर्म कहते हैं । इस कर्म के उदय में सम्यग्दर्शन का घात नहीं होता । ये चल मलिन अगाढ़ दोष भी अत्यन्त सूक्ष्मरूप दोष हैं ।

प्रश्न ४१—अनन्तानुबन्धी क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से पाषाणरेखा सदृश दीर्घकाल तक न मिटने वाले ऐसे क्रोध का वेदन हो जिससे मिथ्यात्वभाव पुष्ट होता चला जावे उस कर्म को अनन्तानुबन्धी क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४२—अनन्तानुबन्धी मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से पाषाण की कठोरता सदृश दीर्घकाल तक न नमने वाले मान का वेदन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसको अनन्तानुबन्धी मानवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४३-—अनन्तानुबन्धी मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से बांस की जड़ की तरह अत्यन्त वक्र माया (छल कपट) का परिणमन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसको अनन्तानुबन्धी मायावेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४४—अनन्तानुबंधी लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से हिरमजी के रंग को तरह दीर्घकाल तक न छूटने वाली तृष्णा का वेदन हो जिससे मिथ्यात्व पुष्ट होता रहे उसे अनन्तानुबन्धी लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४५—अनन्तानुबन्धी कषाय का कितना काल है?

उत्तर—अनन्तानुबन्धी कषाय के संस्कार की अवधि नहीं है । यह कई भवों तक साथ जा सकता है, अनन्त भवों तक साथ जा सकता है ।

प्रश्न ४६—अनन्तातुबन्धी कषाय का कार्य क्या है?

उत्तर—सम्यक्त्व न होने देना और मिथ्यात्व को उत्पन्न करना, पुष्ट करना, दोनों अनन्तानुबन्धी कषाय के कार्य हैं ।

प्रश्न ४७—अनन्तानुबन्धी शब्द का निरुक्त्यर्थ क्या है?

उत्तर—जो अनन्त भवों तक भी सम्बन्ध रखे उसे अनन्तानुबन्धी कहते हैं ।

प्रश्न ४८—अप्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से हलरेखासदृश (पृथ्वी में हल के चलने से होने वाले गड्ढे की तरह) कुछ बहुत काल तक न मिटने वाले क्रोध का वेदन हो जिससे संयमासंयम प्रकट न हो सकता उसको अप्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ४९—अप्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से हड्डी की तरह कुछ कठिनता से मुड़ने वाले मान का वेदन हो जिससे

संयमासंयम प्रकट नहीं हो सकता उसको अप्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५०—अप्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से मेढ़ा के सींग की कुटिलता की तरह वक्र माया का वेदन करे जिससे संयमासंयम प्रकट नहीं हो सकता उसे अप्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५१—अप्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से चके के ओंगन के रंग की रंगाई की तरह कुछ बहुत काल तक न छूटने वाली तृष्णा का वेदन हो जिससे संयमासंयम प्रकट नहीं हो सकता उसे अप्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५२—अप्रत्याख्यानावरण कषाय का काल कितना है?

उत्तर—अप्रत्याख्यानावरण कषाय का संस्कार अधिक से अधिक ६ माह तक रहता है ।

प्रश्न ५३ —अप्रत्याख्यानावरण कषाय का कार्य क्या है?

उत्तर—अप्रत्याख्यानवरण कषाय का कार्य देश संयम को प्रकट न होने देना है अप्रत्याख्यानावरण का शब्दार्थ यह है—अ—ईषत्, प्रत्याख्यान — त्याग का, आवरण — ढाकने वाला । ईषत् माने आंशिक त्याग को देशसंयम अथवा संयमासंयम कहते हैं ।

प्रश्न ५४—प्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से धूलिरेखा याने गाड़ी के चक्के की लकीर के सदृश अल्पकाल तक ही न मिटने वाले क्रोध का वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोधवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५५—प्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से लकड़ी याने काष्ठदण्ड की तरह कुछ शीघ्र मुड़ जाने वाले मान का वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण मानवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५६—प्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से गौमूत्र की तरह अल्पवक्ररूप माया का वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण मायावेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५७—प्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर पर लगे हुए मल की तरह अल्प प्रयत्न से छूट सकने वाली तृष्णा का वेदन हो जिससे सकल संयम प्रकट नहीं हो सकता उसे प्रत्याख्यानावरण लोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ५८—प्रत्याख्यानावरण कषाय का काल कितना है?

उत्तर—प्रत्याख्यानावरण कषाय के संस्कार का काल अधिक से अधिक १५ दिन तक ही है ।

प्रश्न ५९—प्रत्याख्यानावरण कषाय का कार्य क्या है?

उत्तर—प्रत्याख्यानावरण कषाय का कार्य सकल संयम महाव्रत प्रकट नहीं होने देना हैं । प्रत्याख्यानावरण का शब्दार्थ यह है—प्रत्याख्यान=त्याग (सर्वदेश व्रत) का, आवरण=ढांकने वाला ।

प्रश्न ६०-—संज्वलनक्रोधवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जलरेखा के सदृश शीघ्र मिट जाने वाले क्रोध का वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनक्रोधवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६१—संज्वलनमानवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से बेंत (पतली छड़ी) की नम्रता की तरह शीघ्र मिट सके, ऐसे मान का वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनमानवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६२-—संज्वलनमायावेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से चमरी गौ के केशों की तरह अत्यल्प वक्रता वाले मायाकषाय का वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनमायावेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६३—संज्वलनलोभवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से हल्दी के रंग की तरह शीघ्र नष्ट हो जाने वाली तृष्णा का वेदन हो जिससे यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो सकता उसे संज्वलनलोभवेदकमोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६४—संज्वलनकषाय का काल कितना हैं?

उत्तर—संज्वलनकषाय के संस्कार का काल अन्तर्मुहूर्त तक ही हो सकता है ।

प्रश्न ६५—संज्वलन कषाय का कार्य क्या है?

उत्तर—संज्वलन का शब्दार्थ है-सं= सम्यक् प्रकार से, ज्वलन = जो जले अर्थात् संज्वलनकषाय सकलसंयम का नाश न करते हुए रहती है, यही इसका सम्यक्पना है और कषाय के कारण यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो पाता ।

प्रश्न ६६—यथाख्यात चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—कषाय का अभाव होने पर आत्मा का यथा=जैसा कषायरहित शुद्ध स्वभाव है उस स्वरूप के ख्यात याने प्रकट हो जाने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न ६७—हास्यवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय होने पर हास्यजनक राग हो उसे हास्यवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६८—रतिवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से इष्ट विषयों में रमे उसे रतिवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ६९—अरतिवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अनिष्ट विषयों में अरुचि हो उसे अरतिवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७०—शोकवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव के विषाद उत्पन्न हो उसे शोकवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७१-भयवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव के भय उत्पन्न हो उसको भयवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७२—जुगुप्सावेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव के ग्लानि उत्पन्न हो उसे जुगुप्सावेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७३—पुरुषवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से महान् कर्तव्यों में वृत्ति, स्त्रीरमणाभिलाषा आदि पौरुष भाव हों उसे पुरुषवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७४-—स्त्रीवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से कोमलाङ्गता, नेत्रविभ्रम, मुख फुलाना, पुरुष रमणेच्छा आदि स्त्रैणा भाव हों उसे स्त्रीवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७५—नपुंसकवेदक मोहनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से स्त्री पुरुष दोनों में रमने की इच्छा, कामाग्नि की प्रबलता, कायरता आदि क्लैव भाव उत्पन्न हों उसे नपुंसकवेदक मोहनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७६—इन उक्त नौ भेदों का नाम नोकषाय क्यों है?

उत्तर—इन कर्मों की स्थिति अल्प होती है और इनमें अनुभाग भी अल्प होता है, इस कारण ये ईषत् कषायें हैं । नोकषाय का शब्दार्थ यह है—नो=ईषत् कषाय सो नोकषाय ।

प्रश्न ७७—अन्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो कर्म दो के बीच अन्तर को उत्पन्न करने में निमित्त हो उसे अन्तरायकर्म कहते हैं । अन्तराय शब्द का अर्थ भी यही है कि जो अन्तर का आय याने उत्पाद करे सो अंतराय अर्थात् जो जीव के दान, लाभ आदि में विघ्न होने में निमित्त हो उसे अंतरायकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ७८—अन्तरायकर्म के कितने भेद हें?

उत्तर—अन्तरायकर्म के ५ भेद हैं—(१) दानान्तराय, (दे) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय और (५) वीर्यान्तराय ।

प्रश्न ७९—दानान्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से दान देते हुए, जीव के दान में विघ्न उपस्थित हो उसे दानान्तरायकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८०—लाभान्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव के लाभ में विघ्न हो उसे लाभान्तरायकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८१—भोगान्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव के भोग में विघ्न उपस्थित हो उसे भोगान्तरायकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८२—उपभोगान्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव उपभोग में विघ्न आवे उसे उपभोगान्तरायकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८३-—वीर्यान्तरायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के, उदय से जीव के शक्ति के विकास में विघ्न हो उसे वीर्यान्तरायकर्म कहते हैं ।

द्रव्य ८४—अघातियाकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर—अधातिया कर्म के ४ भेद हैं—(१) वेदनीयकर्म, (२) आयुकर्म, (३) नामकर्म और गोत्रकर्म ।

प्रश्न ८५—वेदनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव इन्द्रिय व मन के विषयों का भोगरूप वेदन करे उसे वेदनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८६-—वेदनीयकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर—वेदनीयकर्म के २ भेद हैं—(१) सातावेदनीय और (२) असातावेदनीय ।

प्रश्न ८७-—सातावेदनीयकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से जीव सुख का वेदन करे उसे सातावेदनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८८—असातावेदनीयकर्म किसे कहते हें?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव दुःख का वेदन करे उसे असातावेदनीयकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ८९—क्या वेदनीयकर्म का क्षय होने पर सुख दुःख दोनों का अभाव हो जाता है?

उत्तर—वेदनीयकर्म के क्षय होने पर सुख और दुःख दोनों का क्षय हो जाता है ।

प्रश्न ९०—सुख के अभाव में जीव का स्वभाव ही मिट जावेगा?

उत्तर—जीव का स्वभाव है आनंद । आनंद गुण के परिणमन ३ होते हैं—(१) आनंद, (२) सुख और (३) दुःख । सुख और दुःख आनन्दगुण के विकृत परिणमन हैं और आनन्द गुण का स्वाभाविक परिणमन है ।

प्रश्न ९१—सुख क्यों विकृत परिणमन है?

उत्तर—सुख का अर्थ है-—सु=सुहावना, ख=इन्द्रियों को अर्थात् जो इन्द्रियों को सुहावना लगे सो सुख है । यह सुख दुःख की भांति विकृत परिणमन है, क्योंकि दुःख का मतलब है—दुः=बुरा, असुहावना, ख=इन्द्रियों को अर्थात् जो इन्द्रियों को असुहावना लगे सो दुःख है । इन्द्रियों को सुहावना असुहावना वेदन करना दोनों ही आनन्दगुण के विकार हैं ।

प्रश्न ९२-—आनन्द स्वाभाविक परिणमन कैसे है?

उत्तर-—आनन्द का भाव यह है—आ=समन्तात् नन्दतीति आनन्दः । सर्व ओर से समृद्धिशाली होना सो आनन्द है । इसमें परम निराकुल अवस्था ही परम समृद्धि है, वह कर्म क्षय होने पर होती ही है ।

प्रश्न ९३-—आयुकर्म किसे कहते हें?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीवन अवस्था हो और अभाव से मरण अवस्था हो उसे आयुकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ९४—आयुकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर—आयुकर्म के ४ भेद हैं—(१) नरकायु, (२) तिर्यगायु, (३) मनुष्यायु और (४) देवायु ।

प्रश्न ९५-—नरकायुकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का नरकभव में अवस्थान हो उसे नरकायुकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ९६—तिर्यगायकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से आत्मा का तिर्यञ्चभव में अवस्थान हो उसे तिर्यगायुकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ९७—मनुष्यायुकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का मनुष्यभव में अवस्थान हो उसे मनुष्यायुकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ९८—देवायुकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का देवभव में अवस्थान हो उसे देवायुकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ९९—नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से नाना प्रकार शरीर सम्बन्धी रचना हो उसे नामक में कहते हैं ।

प्रश्न १००—नामकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर-—नामकर्म के ९३ भेद हैं—४ गतिनामकर्म (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव), ५ जातिनामकर्म (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय), ५ शरीरनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण), ३ अङ्गोपाङ्गनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक और आहारक), १ निर्माणनामकर्म, ५ बन्धननामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण), ५ संघातनामकर्म (औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण), ६ संस्थाननामकर्म (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, वामन, कुब्जक और हुंडक), ६ संहनननामकर्म (वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तसृपाटिका), ८ स्पर्शनामकर्म (स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, कठोर और मृदु) ५ रसनामकर्म (अम्ल, मधुर, कटु, तिक्त, कषायित), २ गन्धनामकर्म (सुगन्ध और दुर्गन्ध), ५ वर्णनामकर्म (कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत), ४ आनुपूर्व्यनामकर्म (नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य), १ अगुरुलघुनामकर्म, १ उपघातनामकर्म, १ परघातनामकर्म, १ आतपनामकर्म, १ उद्योतनामकर्म, १ उच्छ्वासनामकर्म, २ विहायोगतिनामकर्म (प्रशस्त और अप्रशस्त), १ प्रत्येकशरीरनामकर्म, १ त्रसनामकर्म, १ सुभगनामकर्म, १ सुस्वरनामकर्म, १ शुभनामकर्म, १ वादरनामकर्म, १ पर्याप्तिनामकर्म, १ स्थिरनामकर्म, १ आदेयनामकर्म, १ यश:कीर्तिनामकर्म, १ साधारणशरीरनामकर्म, १ स्थावरनामकर्म, १ दुर्भगनामकर्म, १ दुःस्वरनामकर्म, १ अशुभनामकर्म, १ सूक्ष्मनामकर्म, १ अपर्याप्तिनामकर्म, अस्थिरनामकर्म, १ अनादेयनामकर्म, १

अयश:कीर्तिनामकर्म और १ तीर्थङ्करनामकर्म ।

प्रश्न १०१-—नरकगतिनामकर्म किसे कहते है?

उत्तर-—जिस नामकर्म के उदय से नरकभव के योग्य परिणाम हो जिस भाव में रहने पर नरक में उदय आने योग्य कर्मों का उदय होता है उसको नरकगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०२—तिर्यग्गतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से तिर्यग्भव के योग्य परिणाम हों, जिस भाव में रहने पर तिर्यंच में उदय आने योग्य कर्मों का उदय होता रहता है उसे तिर्यग्गतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०३—मनुष्यगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से मनुष्यभव के योग्य परिणाम हों, जिस भाव में रहने पर मनुष्य में उदय याने योग्य कर्मों का उदय होता रहता है उसे मनुष्यगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०४—देवगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से देवभव के योग्य परिणाम हों, जिस भाव में रहने पर, देव में उदय आने के योग्य कर्मों का उदय होता रहता है उसे देवगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०५—जातिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से प्राणियों के सदृश उत्पन्न हों उसे जातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०६—एकेन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से केवल स्पर्शनइन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे एकेन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०७—द्वीन्द्रियजातिनामकर्म किस कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से स्पर्शन और रसना—इन दो इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे द्वीन्द्रियजातिनामकर्म हैं ।

प्रश्न १०८—त्रीन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिसके उदय से स्पर्शन, रसना व घ्राण-—इन तीन इन्द्रिय वाला जीवन मिले उस कर्म को त्रीन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १०९—चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु—इन चार इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११०—पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र—इन पांचों इन्द्रिय वाला जीवन मिले उसे पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १११—शरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर की रचना हो उसे शरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११२—औदारिक शरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से औदारिक नामक आहारवर्गणा के पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीव के साथ सम्बन्ध हो उसे औदारिक शरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११३—वैक्रियकशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से वैक्रियक नामक आहारवर्गणा के पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीव के साथ संबन्ध हो उसे वैक्रियकशरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११४—आहारकशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से, आहारक नामक आहारवर्गणा के पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीव के साथ संबन्ध हो उसे आहारकशरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११५—तैजसशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से तैजसवर्गणा के पुद्गलस्कन्ध शरीररूप परिणत होते हुये जीव के साथ संबन्ध हो उसे तैजसशरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११६—कार्माणशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से कार्माणवर्गणा के पुद्गल स्कन्ध कर्मरूप परिणत होकर कार्माण शरीररूप परिणत होते हुए जीव के साथ संबन्ध हो उसे कार्माणशरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११७—अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से शरीर के अङ्ग और उपाङ्गों की निष्पत्ति होती है उसे अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न ११८—अङ्ग कितने और कौन-कौन से हैं?

उत्तर—अङ्ग ८ होते हैं—(१) दक्षिण पाद, (२) वाम पाद, (३) दक्षिण हस्त, (४) वाम हस्त, (५) नितंब, (६) पीठ, (७) हृदय, (८) मस्तक ।

प्रश्न ११९—उपाङ्ग कितने और कौन-कौन से हे?

उत्तर—कपाल, ललाट, कान, नाक, ओंठ, अंगुली, ठोड़ी आदि अनेक उपाङ्ग होते हैं ।

प्रश्न १२०—औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से औदारिक शरीर के अङ्ग और उपाङ्गों की रचना हो उसे औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२१—वैक्रियकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से वैक्रियक शरीर के अङ्ग और उपाङ्गों की निष्पत्ति हो उसे वैक्रियकशरीर

अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२२—आहारकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म में उदय से आहारक शरीर के अङ्ग और उपाङ्गों की रचना हो उसे आहारकशरीर अङ्गोपाङ्गनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२३-—निर्माणनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से अङ्ग उपाङ्गों की यथायोग्य ठीक-ठीक प्रमाण से और ठीक-ठीक स्थान पर निष्पत्ति हो उसे निर्माणनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२४—बन्धननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से जीवसम्बंध वर्तमान पुद्गल सम्बंधों के साथ शरीररूप परिणत होने वाले पुद्गलस्कन्धों का परस्पर बन्धन हो उसे बन्धननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२५—औदारिकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से जीवसंबद्ध वर्तमान पुद्गलस्कन्धों के साथ औदारिक शरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धों का परस्पर बन्धन हो उसे औदारिक शरीरबन्धननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२६—वैक्रियकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से जीवसंबद्ध वर्तमान पुद्गलस्कन्धों के साथ वैक्रियक शरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धों का परस्पर बन्धन हो उसे वैक्रियकशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२७—आहारकशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से आहारकशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कंधों का जीवसंबद्ध पुद्गलस्कंधों के साथ परस्पर बन्धन हो उसे आहारकशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२८—तैजसशरीर बंन्धननामकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से तैजसशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कंधों का जीवसंबद्ध पुद्गलस्कंधों के साथ परस्पर बन्धन हो उसे तैजसशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १२९—कार्माणशरीर बन्धननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से कार्माणशरीररूप परिणत हुए पुद्गलस्कन्धों का जीवसंबद्ध पुद्गलस्कन्धों के साथ परस्पर बन्धन हो उसे कार्माणशरीर बन्धननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३०—संघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से बद्धशरीर स्कन्धों का परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे संघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३१—औदारिक शरीरसंघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से बद्ध औदारिक शरीरस्कन्धों का परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हों उसे

औदारिक शरीरसंघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३२—वैक्रियकशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से बद्ध वैक्रियकशरीर स्कन्धों को परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे वैक्रियकशरीर संघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३३—आहारकशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से बद्ध आहारकशरीर स्कन्धों का परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे आहारकशरीर संघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३४-—तैजसशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से बद्ध तैजसशरीर स्कंधों का परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे तैजसशरीर संघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३५-—कार्माणशरीर संघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से बद्ध कार्माणशरीर स्कंधों का परस्पर छिद्ररहित संश्लेष हो उसे कार्माणशरीर संघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३६—संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३७—समचतुरस्र संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर बिल्कुल सुडौल बने उसे समचतुरस्र संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३८—न्यग्रोधपरिमंडल संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से बड़ के पेड़ के आकार की तरह शरीर का नीचे का भाग छोटा और ऊपर का भाग बड़ा हो उसे न्यग्रोधपरिमंडल संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १३९—स्वाति संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर का स्वाति (वामी) का आकार बने याने नीचे का भाग छोटा और ऊपर का लम्बा बने उसे स्वातिसंस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४०—वामन संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बौना हो उसे वामन संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४१—कुब्जक संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४२—हुंडक संस्थाननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार कई प्रकार का या विचित्र अथवा अटपटा हो उसे हुंडक संस्थाननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४३—संहनननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियों और हड्डियों के सन्धियों याने बंधन विशेष की रचना होती है उसे संहनननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४४—वज्रऋषभनाराच संहनननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से वज्र के हाथ, वज्र के वेठन और वज्र के न हों उसे वज्रऋषभनाराच संहननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४५—वज्रनाराच संहननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़ और वज्र की कलियां हों, किन्तु वेठन वज्र की कीलिया हों उसे वज्रनाराच संहननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४६—नाराचसंहननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से हड्डियाँ कीलियों से कीलित हों उसे नारचसंहननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४७—अर्द्धनाराच संहननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियां आधी कीलित हों उसको अर्द्धनाराच संहननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४८—कीलक संहननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियां कीलियोंसी स्पष्ट हों उसे कीलकसंहनन नामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १४९—असंप्राप्तसृपाटिका संहननामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डियाँ नसाजाल से बंधी हुई हों उसे असंप्राप्तसृपाटिका संहननामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५०—स्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५१—स्निग्धस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत स्निग्ध स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे स्निग्धनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५२—रूक्षस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत रूक्ष स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे रूक्षस्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५३—शीतस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत शीतस्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे शीत—स्पर्शनामकर्म

कहते हैं ।

प्रश्न १५४—उष्णस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत उष्ण स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे उष्णस्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५५—गुरुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत गुरु नामक स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे गुरुस्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५६—लघुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत लघु नामक स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे लघुस्पर्शनामकर्म कहते हैं?

प्रश्न १५७—कठोरस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से नियत कठोरनामक स्पर्श की निष्पत्ति होती है उसे कठोर स्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५८—मृदुस्पर्शनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में नियत कोमल स्पर्श की उत्पत्ति होती है उसे मृदुस्पर्शनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १५९—रसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत रस की निष्पत्ति हो उसे रसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६०—अम्लरसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत अम्ल (खट्टे) रस की निष्पत्ति हो उसे अम्लरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६१—मधुररसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत मधुर रस की निष्पत्ति हो उसे मधुररसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६२—कटुरसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत कडुवे रस की निष्पत्ति हो उसे कटुरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६३—तिक्तरसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत तीखे रस की निष्पत्ति हो उसे तिक्तरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६४—कषायितरसनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत कषैले रस की निष्पत्ति हो उसे कषायितरसनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६५—गन्धनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत गन्ध की निष्पत्ति हो उसे गन्धनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६६—सुगन्धनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत सुगन्ध की निष्पत्ति हो उसे सुगन्ध नामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६७—दुर्गन्धनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत दुर्गन्ध की निष्पत्ति हो उसे दुर्गन्धनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६८—वर्णनामकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से प्रतिनियत वर्ण की निष्पत्ति हो उसे वर्णनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६९—कृष्णवर्णनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत कृष्णवर्ण की निष्पत्ति हो उसे कृष्णवर्णनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७०—नीलवर्णनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत नील वर्ण की निष्पत्ति हो उसे नीलवर्णनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७१—रक्तवर्णनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत लाल वर्ण की निष्पत्ति हो उसे रक्तवर्णनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७२—पीतवर्णनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत पीले वर्ण की निष्पत्ति हो उसे पीतवर्णनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७३—श्वेतवर्णनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में प्रतिनियत श्वेत वर्ण की निष्पत्ति हो उसे श्वेतवर्णनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७४—शरीर पुद्गल है और पुद्गल का स्वभाव ही रूपादि का है, फिर स्पर्शनामकर्म की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—यदि स्पर्शादि नामकर्म न हों तो यह व्यवस्था नहीं बनेगी कि भौंरों में भौंरों जैसा प्रतिनियत रूप,

रस, गंधादि से हो । घोड़ों, मनुष्यों आदि में घोड़ों, मनुष्यों आदि जैसा रूप रसादि हो । यह व्यवस्था इन स्पर्शादि नामकर्मों के उदय से होती है ।

प्रश्न १७५—आनुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से विग्रहगति में पूर्व शरीर के आकार आत्मप्रदेश हों उसे आनुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७६—विग्रहगति किसे कहते हैं?

उत्तर-—मरण के पश्चात् नवीन देह धारण करने के लिये जो जीव का गमन होता है उसे विग्रहगति कहते हैं ।

प्रश्न १७७-—क्या सभी विग्रहगतियों में जीव का आकार पूर्वभव जैसा होता है?

उत्तर—मोड़े लेकर जाने वाली गति में जीव का आकार पूर्वभव के आकार का होता है ।

प्रश्न १७८—बिना मोड़े की विग्रहगति में जीव का क्या आकार रहता है?

उत्तर—बिना मोड़े वाली गति में जीव को एक भी समय का अवकाश नहीं मिलता, किन्तु पहिले समय में मरा, दूसरे समय में उत्पन्न हो गया, इसलिये आकार सहित गति न होकर जीव का विसर्पण होकर जन्मस्थान पर संकोच हो जाता है । वहाँ आनुपूर्व्यनामकर्म का उदय भी नहीं है ।

प्रश्न १७९-—नरकगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से तिर्यंच या मनुष्यगति से मरणकर नरकभव में देहधारण के लिये जाने वाले जीव का आकार पूर्व के देह के आकार में हो उसे नरकगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८०—तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से किसी गति से मरणकर तिर्यग्गति में देहधारण के लिये जाने वाले जीव का आकार पूर्व के देह के आकार में हो उसे तिर्यग्गत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८१—मनुष्यगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से किसी गति से मरणकर मनुष्यगति में देहधारण के लिये जाने वाले जीव का आकार पूर्व के देह के आकार में हो उसे मनुष्यगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८२—देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से तिर्यञ्च या मनुष्यगति से मरणकर देवगति में देहधारण के लिये जाने वाले जीव का आकार पूर्व के देह के आकार में हो उसे देवगत्यानुपूर्व्यनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८३—अगुरुलघुनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर यथायोग्य गुरु और लघु हो अर्थात् न तो ऐसा गुरु शरीर हो कि लोह के गोले के समान गिर जावे और न ऐसा लघु शरीर हो कि आक के तूल के समान उड़ जावे, उसे अगुरुलघुनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८४—उपघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अपने ही शरीर का अवयव अपना ही घात करने वाला हो उसे उपघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८५—परघातनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से परप्राणी का घात करने वाला देह में अवयव हो उसे परघातनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८६—आतपनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर मूल में तो ठंडा हो और दूरवर्ती पदार्थों के उष्ण हो जाने में निमित्त हो तथा तेजोमय हो उसे आतपनामकर्म कहते हैं । इसका उदय सूर्यविमान के पृथ्वीकायिक जीवों में पाया जाता है ।

प्रश्न १८७—उद्योतनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर मूल में भी शीत हो और दूरवर्ती पदार्थों के उष्णता का कारण न हो तथा उद्योतरूप (चमकदार) हो उसे उद्योतनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८८—उच्छ्वासनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में श्वास और उच्छ्वास प्रकट हो उसे उच्छ्वासनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १८९—विहायोगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव गमन करे उसे विहायोगतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९०—प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से सुन्दर गमनविधि हो उसे प्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते हैं । जैसे हंस, घोड़ा आदि की गति ।

प्रश्न १९१—अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से असुन्दर गमनविधि हो उसे अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्म कहते हैं । जैसे गधा, कुत्ता आदि की गतिविधि ।

प्रश्न १९२—प्रत्येकशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से एक शरीर का अधिष्ठाता एक जीव हो उसे प्रत्येकशरीरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९३—त्रसनामकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अंग उपांग सहित काय (शरीर) मिले उसे त्रसनामकर्म कहते हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं ।

प्रश्न १९४—सुभगनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से प्राणी पर अन्य प्राणियों की प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभगनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९५—सुस्वरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अच्छा स्वर हो उसे सुस्वरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९६—शुभनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर के शुभ अवयव हों उसे शुभनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९७—वादरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से वादर शरीर हो, के दूसरे को रोक सके व दूसरे से रुक सके उसे वादरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९८—पर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर मिले जिसकी पर्याप्ति नियम से पूर्ण हो, शरीरपर्याप्ति पूर्ण हुए बिना मरण न हो उसे पर्याप्तिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न १९९—स्थिरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस नामकर्म के उदय से शरीर में धातु उपधातु अपने-अपने ठिकाने रहें, अचलित रहें उसे स्थिरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २००—आदेयनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर में कान्ति प्रकट हो उसे आदेयनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०१—यश:कीर्तिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का यश और कीर्ति प्रकट हो उसे यश:कीर्तिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०२—साणारणशरीरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हों उसे साधारणशरीरनामकर्म कहते हैं । जैसे निगोद ।

प्रश्न २०३—स्थावरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अंग उपांग रहित शरीर मिले उसे स्थावरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०४—दुर्भगनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से प्राणी पर अन्य प्राणियों की अरुचि उत्पन्न हो उसे दुर्भगनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०५—दुःस्वरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर--जिस नामकर्म के उदय से बुरा स्वर हो उसे दुःस्वरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०६—अशुभनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर के असुहावने अवयव हों उसे अशुभनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न२०७—सूक्ष्मनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर-—जिस कर्म के उदय से शरीर सूक्ष्म हो, जो न किसी को रोक सके और न किसी से रुक सके

उसे सूक्ष्मनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०८—अपर्याप्तिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर मिले जिसकी पर्याप्ति पूर्ण न हो और मरण हो जाये उसे अपर्याप्तिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २०९—अस्थिरनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से शरीर के धातु उपधातु चलित हो जाया करें उसे अस्थिरनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २१०—अनादेयनामकर्म किसे कहते है?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से कान्तिरहित शरीर हो उसे अनादेयनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २११—अयश:कीर्तिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से अपयश और अकीर्ति हो उसे अयशःकीर्तिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २१२—तीर्थङ्करप्रकृतिनामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से तीर्थंकरपना हो, सर्वज्ञदेव के सातिशय दिव्यध्वनि, विहार आदि से लोकोपकार हो उसे तीर्थंकरप्रकृतिनामकर्म कहते हैं ।

प्रश्न २१३—क्या ये भेद एक-एक कर्मस्कन्ध हैं?

उत्तर—प्रत्येक भेद अनन्त कार्माणवर्गणावों का स्कन्ध है । जिन कार्माणवर्गणाओं की प्रकृति उस भेदरूप है उन कार्माणस्कन्धों की वह संज्ञा है ।

प्रश्न २१४—इन द्रव्यास्रवों के जानने से कुछ आत्मलाभ है?

उत्तर—भूतार्थनय से यदि इन्हें जाना जाये तो इनका ज्ञान निश्चयसम्यक्त्व का कारण हो जाता है ।

प्रश्न २१५—भूतार्थनय से इन द्रव्यास्रवों का जानना किस प्रकार है?

उत्तर-—उक्त सब द्रव्यास्रव पर्यायें हैं । किस द्रव्य की पर्यायें हैं? पुद्गल द्रव्य की ये पर्यायें पुद्गलद्रव्य से उत्पन्न हुई हैं । जहाँ से उत्पन्न हुई हैं केवल उस द्रव्य की दृष्टि रहने पर ये पर्यायें गौण हो जाती हैं और द्रव्यदृष्टि मुख्य हो जाती है । पश्चात् द्रव्यदृष्टि में विकल्पों का अवकाश न होने से द्रव्यदृष्टि का विकल्प भी छूटकर आत्मा का केवल सहज आनंदमय परिणमन का अनुभव रह जाता है । इस शुद्ध आत्मतत्त्व की अनुभूति को निश्चयसम्यक्त्व कहते हैं ।

इस प्रकार आस्रव तत्त्व का वर्णन करके बन्धतत्त्व का वर्णन करते हैं—

गाथा ३२

वज्झदि कम्मं जेण हु चेदणभावेण भावबन्धो सो ।
कम्मादपतेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ।।३२।।

अन्वय—जेण चेदणभावेण कम्मं वज्झदि सो भावबन्धो हु कम्मादपते साणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ।

अर्थ —जिस चेतनभाव के निमित्त से कर्म बंधता है वह तो भावबंध है और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशरूप होना अर्थात् एकाकार होना सो द्रव्यबंध है ।

प्रश्न १—कौन से चेतनभाव भावबन्ध कहलाते हैं?

उत्तर—मिथ्यात्व, राग और द्वेष भावबन्ध कहलाते हैं ।

प्रश्न २—मिथ्यात्व आदि भाव भावबंध क्यों हैं?

उत्तर-—मिथ्यात्वादि भाव अखण्ड निज चैतन्यस्वभाव के अनुभव से विपरीत हैं, विरुद्ध भाव हैं, अत: भावबन्ध हैं ।

प्रश्न ३—बन्ध में तो दो का सम्बन्ध है, यहाँ दो क्या तत्त्व हैं जिनका बंध हो?

उत्तर—यहां उपयोग और रागादि का सम्बन्ध हुआ है अर्थात् चैतन्यगुण के विकास में चारित्रगुण का विकृत विकास अभिगृहीत हुआ? है, अत: अर्थात् उपयोगभूमि में रागादि के सम्बंध होने से भावबन्ध कहलाता है ।

प्रश्न ४—यह चेतनभाव शुद्ध है अथवा अशुद्ध?

उत्तर—यह चेतनभाव अशुद्ध है, क्योंकि कर्मरूप उपाधि को निमित्त पाकर हुआ है ।

प्रश्न ५—भावबन्ध की तरह क्या द्रव्यबन्ध भी एक ही पदार्थ में होता है?

उत्तर—द्रव्यबन्ध एक जाति के पदार्थों में होता है अर्थात् पुद्गलकर्म का पुद्गलकर्म के साथ बन्ध होना द्रव्यबन्ध है ।

प्रश्न ६—यहाँ आत्मा और कर्म के परस्पर बन्ध को द्रव्यबन्ध कैसे कहा?

उत्तर—यह दो जाति के द्रव्यों का बन्ध है, इसे भी द्रव्यबन्ध कहते हैं । इस द्रव्यबन्ध का दूसरा नाम उभयबन्ध है ।

प्रश्न ७—क्या केवल एक पुद्गलकर्म में द्रव्यबन्ध नहीं माना जा सकता?

उत्तर—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति व अनुभाग के बन्ध की अपेक्षा से एक पुद्गलकर्म में द्रव्यबन्ध माना जा सकता है । किन्तु यह बन्ध केवल एक परमाणु या संख्यात असंख्यात परमाणुओं के स्कन्ध में भी नहीं बनता । बनता तो अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध में, फिर भी सूक्ष्मदृष्टि से उसी स्कन्ध के एक-एक परमाणु में भी वह सब है ।

प्रश्न ८—आत्मा तो अमूर्त है, उसके साथ मूर्तकर्म का बंध कैसे हो जाता है?

उत्तर—संसारी आत्मा कर्मबन्धन से बद्ध होने के कारण कर्मसम्बन्ध से कथंचित् मूर्त माना गया है, ऐसे आत्मा के साथ कर्म का बन्ध हो जाना युक्त ही है ।

प्रश्न ९—आत्मा के साथ कर्म का एकाकार हो जाने का क्या अर्थ है?

उत्तर—आत्मा का व कर्मस्कन्धों का एकक्षेत्रावगाह हो जाना, उनमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध हो जाना एकाकारता का अर्थ है । ऐसा होने पर भी निश्चय प्रत्येक द्रव्य अपने आप में ही है, अत: स्वतन्त्र है ।

प्रश्न १०—भावबन्ध और भावास्रव में क्या अन्तर है?

उत्तर—भावबन्ध में कर्मबन्ध की निमित्तता है और भावास्रव में कर्मास्रव की निमित्तता है । भावबंध व्याप्य है और भावास्रव व्यापक है ।

अब द्रव्यबन्ध के भेद व भेदों का कारण दिखाते हैं—

गाथा ३३

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदे स भेदाहु चदुविदोबंधो ।
जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।।३३।।

अन्वय—बन्धो पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदे स भेदाहु चदुविदो । पयडिपदेसा जोगा ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ।

अर्थ—बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से ४ प्रकार का होता है । उनमें से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योग से होते हैं तथा अनुभागबन्ध और स्थितिबन्ध कषाय से होते हैं ।

प्रश्न १—प्रकृतिबन्ध किसे कहते है?

उत्तर—जीव को विभाव पर्याय में ले जाने के लिये कर्मस्कन्धों में पृथक्-पृथक् प्रकृतियों का (आदतों या स्वभावों का) पड़ जाना प्रकृतिबन्ध है ।

प्रश्न २—ज्ञानावरणकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर—ज्ञानावरण की प्रकृति आत्मा के ज्ञानगुण को आच्छादित करने की है ।

प्रश्न ३—दर्शनावरणकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर-—दर्शनावरणकर्म की प्रकृति आत्मा के दर्शनगुण को आच्छादित करने की है ।

प्रश्न ४—मोहनीयकर्म की क्या प्रकृति ह?

उत्तर—जीव को हेय और उपादेय के विवेक से भी रहित कर देने की प्रकृति मोहनीयकर्म की है ।

प्रश्न ५-—अन्तरायकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर-—दान, लाभ आदि में विघ्न करने की प्रकृति अन्तरायकर्म की है ।

प्रश्न ६—वेदनीयकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर—वेदनीयकर्म की प्रकृति अल्पसुख और बहुत दुःख उत्पन्न करने की है ।

प्रश्न ७—आयुकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर—प्रतिनियत शरीर में ही जीव को रोके रहना आयुकर्म की प्रकृति है ।

प्रश्न ८—नामकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर—नानारूपमय शरीर की रचना में निमित्त होना नामकर्म की प्रकृति है ।

प्रश्न ९—गोत्रकर्म की क्या प्रकृति है?

उत्तर—उच्च अथवा नीच गोत्र करना गोत्रकर्म की प्रकृति है ।

प्रश्न १०—एक समय में क्या एक प्रकृतिबन्ध होता है या सर्व प्रकृतिबन्ध होता है?

उत्तर—यदि आयु प्रकृतिबन्ध अपकर्षकाल नहीं है तो एक समय में आयुप्रकृति को छोड़कर ७ कर्मप्रकृतियों का बन्ध होता है । यदि अपकर्षकाल है तो आठों कर्मप्रकृतियों का बंध हो सकता है ।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में आयुप्रकृति और मोहनीयप्रकृति के बिना शेष ६ कर्मप्रकृतियों का (कर्मों का) बन्धन होता है । उपशान्तमोह, क्षीणमोह व सयोगकेवली के केवल एक देदनीयप्रकृति का आस्रव होता है । यह एक प्रकृतिबन्ध दूसरे समय भी नहीं ठहरता है, इसलिये इसे आस्रव (ईर्यापथ) आस्रव कहते हैं ।

प्रश्न ११—अपकर्षकाल का तात्पर्य क्या है?

उत्तर—आयुकर्म के बंधने के ८ प्रकार होते हैं—कर्मभूमि मनुष्य व तिर्यञ्चों के आयु बंध का पहिली बार उनकी वर्तमान आयु के २ बटा ३ भाग बीतने पर होता है । यदि तब आयु न बंधे तब शेष आयु के दो विभाग बीतने पर होता है । इस प्रकार शेष के दो विभागों में ६ बार और कहना चहिये ।

प्रश्न १२—यदि उन आठ बारों में आयु न बंध सके तब कब आयु बंधेगी?

उत्तर—यदि उन आठ अपकर्षों में अश्रु न बंधे तब अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में अवश्य बंध जावेगी । जिसे मोक्ष जाना है उसके उस चरमभव में कोई आयु नहीं बंधती ।

प्रश्न १३—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यञ्चों के आठ अपकर्ष कब होते हैं?

उत्तर—भोगभूमिया मनुष्य तिर्यञ्च के अन्तिम ६ माह शेष रहने पर उसके आठ बार दो विभाग करने चाहियें । जैसे पहिली बार दो माह आयु शेष रहने पर होता है ।

प्रश्न १४—अस्थिर भोगभूमिया के नर व तिर्यञ्चों के अपकर्ष कैसे लेते हैं?

उत्तर—भरत और ऐरावत क्षेत्रों में भोगभूमि पहले, दूसरे, तीसरे काल में होती हैं । ये अस्थिर भोगभूमि कहलाती हैं । अस्थिर भोगभूमि मनुष्य और तिर्यञ्चों के अपकर्ष उनकी ९ माह आयु शेष रहने पर ८ बार दो विभागों में लगानी चाहिये । जैसे कि इनका पहिली बार ३ माह आयु शेष रहने पर होता है ।

प्रश्न १५—देव व नारकियों के आयुबन्ध के अपकर्ष कब होते हैं?

उत्तर—देव व नारकियों के आयुबन्ध के अपकर्ष उनकी आयु ६ माह शेष रहने पर ८ बार दो विभागों में लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न १६—एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवों का आयुबंध का अपकर्ष कब होता है?

उत्तर—एकेन्द्रियादिक असंज्ञी जीवों का अपकर्ष कर्मभूमिया की तरह समस्त आयु के ८ बार दो विभागों में लगा लेना चाहिये । जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष की है तो ५४ वर्ष होने पर आयुबंध हो सकता, तब आयुबन्ध न हो तो फिर ७२ वर्ष की आयु में आयुबंध हो सकता । तब न बंधे तो फिर ७८ वर्ष की आयु में आयुबंध हो सकता, तब ८० वर्ष की उम्र में आयुबंध हो सकता । इस प्रकार पूरे ८ बार कर लेना चाहिये ।

प्रश्न १७—क्या एक कर्म में आवान्तर प्रकृतियाँ भी हो सकती हैं?

उत्तर—कर्मों के जो १४८ भेद बताये गये हैं । उनरूप प्रकृतियाँ तो होती ही हैं यह तो स्पष्ट है, किन्तु १४८ प्रकृतियों में किसी एक प्रकृति में भी आवांतर असंख्यात प्रकृतियां होती हैं । जैसे एक मतिज्ञानावरण को लें, उसमें घटमतिज्ञानावरण, पटमतिज्ञानावरण आदि अनेक प्रकृतियां हो जाती हैं ।

प्रश्न १८—स्थितिबंध किसे कहते हैं?

उत्तर—जीव के प्रदेशों में बद्धकर्मस्कन्धों की कर्मरूप से रहने को, काल की मर्यादा पड़ जाने को स्थितिबन्ध कहते हैं ।

प्रश्न १९—किस कर्म की कितनी उत्कृष्ट स्थिति होती है?

उत्तर—ज्ञानावरण कर्म की ३० कोड़ाकोड़ीसागर, दर्शनावरण की ३० कोड़ाकोड़ीसागर, मोहनीयकर्म की ७० कोड़ाकोड़ीसागर, अन्तरायकर्म की ३० कोड़ाकोड़ीसागर, वेदनीयकर्म की ३० कोड़ाकोड़ीसागर, आयुकर्म की ३३ कोड़ाकोड़ी सागर, नामकर्म की २० कोड़ाकोड़ीसागर और गोत्रकर्म की २० कोड़ाकोड़ीसागर उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

प्रश्न २०—एक कर्मप्रकृति के जितनी कर्मवर्गणायें बंधती हैं क्या उन सभी वर्गणाओं की उक्त स्थिति होती है?

उत्तर—आबाधाकाल के बाद किन्हीं वर्गणावों की १ समय की, किन्हीं वर्गणावों की २ समय की, किन्हीं वर्गणावों की ३ समय की इत्यादि प्रकार से १-१ समय बढ़ाकर उत्कृष्ट स्थिति तक लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न २१—तब किन्हीं वर्गणावों की उक्त उत्कृष्ट स्थिति हुई, फिर कर्मसामान्य की उत्कृष्ट स्थिति कैसे हुई?

उत्तर—एक समय में जितनी कार्माणवर्गणायें बंधी उनमें से जो एक प्रकृति की हुई, उनमें प्रकृति की अपेक्षा अभेद करके उस प्रकृति की जो उत्कृष्ट स्थिति होती है उस ही का उत्कृष्ट में वर्णन किया है ।

प्रश्न २२—अबाधाकाल किसे कहते हैं?

उत्तर—बद्धकर्मस्कन्ध जितने काल उदय में नहीं आ सकते उतने काल को अबाधाकाल कहते हैं । यहाँ सामान्य अबाधाकाल का प्रकरण है, अत: उस बद्ध कर्मस्कन्ध में से कोई भी वर्गणायें जब तक उदय में नहीं आ सकतीं उतना अबाधाकाल यहाँ ग्रहण करना ।

प्रश्न २३—विशेषरूप से अबाधाकाल क्या होता है?

उत्तर—एक समय में बंधे हुए कर्मस्कन्धों में भी भिन्न-भिन्न कर्मवर्गणावों की जो-जो स्थिति मिली है उससे पहिले का काल उन-उन कर्मवर्गणाओं का अबाधाकाल कहलाता है ।

प्रश्न २४—कर्मों की जघन्यस्थिति क्या है?

उत्तर—ज्ञानावरणकर्म की अन्तर्मुहूर्त, दर्शनावरणकर्म की अन्तर्मुहूर्त, मोहनीयकर्म की अन्तर्मुहूर्त, अन्तरायकर्म की अन्तर्मुहूर्त, वेदनीयकर्म की १२ मुहूर्त, आयुकर्म की अंतर्मुहूर्त, नाम कर्म की ८ मुहूर्त और गोत्रकर्म की ८ मुहूर्त जघन्यस्थिति होती है ।

प्रश्न २५—इन जघन्यस्थितियों को कौन जीव बांधता है?

उत्तर—आयुकर्म को छोड़कर बाकी सब कर्मों की जघन्यस्थितियों को उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणी में होने वाले मुनिवृषभ ही बांधते हैं । आयुकर्म की जघन्यस्थिति को क्षुद्र जन्म वाले जीव बांधते हैं ।

प्रश्न २६—अनुभाग बन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—जीव प्रदेशों के साथ बद्ध कर्मस्कन्धों में सुख दुःख आदि देने की शक्ति विशेष के पड़ जाने को अनुभागबन्ध कहते हैं ।

प्रश्न २७—अनुभाग के संक्षिप्त प्रकार कितने हैं?

उत्तर—अनुभाग के संक्षिप्त ४ प्रकार हैं—(१) मन्द, (२) मंदतीव्र, (३) तीव्रमंद और (४) तीव्र ।

प्रश्न २८—इन ४ प्रकार के अनुभागों में तारतम्य किस प्रकार है?

उत्तर—अनुभागों का तारतम्य उदाहरण द्वारा बताया जा सकता है । एतदर्थ तीन विभाग करने चाहिये—(१) घातिया कर्मों का अनुभाग, (२) पुण्यरूप अघातिया कर्मों का अनुभाग और (३) पापरूप घातिया कर्मों का अनुभाग ।

प्रश्न २९—घातिया कर्मों के उन चार प्रकार के अनुभागों के उदाहरण क्या हैं?

उत्तर—घातिया कर्मों के अनुभाग लता, दारु (काठ), अस्थि व पाषाण के समान उत्तरोत्तर कोमल से कठोर फल देने वाले होते गये हैं ।

प्रश्न ३०—पुण्यरूप घातियाकर्मों के अनुभाग किसके समान हैं?

उत्तर—पुण्यरूप घातियाकर्मों के अनुभाग गुड़, खांड, मिश्री और अमृत के समान उत्तरोत्तर मधुर हैं, फल देने वाले हैं ।

प्रश्न ३१—पापरूप घातियाकर्मों के अनुभाग किसके समान हैं?

उत्तर-—पापरूप घातियाकर्मों के अनुभाग नीम, काञ्जीर, विष और हालाहाल के समान उत्तरोत्तर कटुक फल देने वाले हैं ।

प्रश्न ३२—प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—कर्मपरमाणुवों का परस्पर व जीवप्रदेशों के साथ बन्ध होने को प्रदेशबन्ध कहते हैं ।

प्रश्न ३३—एक बार में कितने कर्मपरमाणुवों का बन्ध होता है?

उत्तर—सिद्धों अनन्तवें भाग और अभव्यों से अनन्तगुणे कर्मपरमाणुवों का एक समय में बन्ध हो जाता है । यह संख्या इतने लम्बे माप की है कि एक जीव के साथ इतने कर्मपरमाणुवों का बन्ध होता है और एक जीव के एक-एक प्रदेश पर इतने कर्मपरमाणुवों का बन्ध हो जाता है ।

प्रश्न ३४—बद्ध कर्मपरमाणु द्रव्यों का किस-किस कर्मप्रकृति में कितना विभाग होता है ?

उत्तर—सबसे अधिक वेदनीयकर्म में, उससे कम मोहनीयकर्म में, उससे कम ज्ञानावरण में, ज्ञानावरण के बराबर दर्शनावरण में, ज्ञानावरण के बराबर अन्तरायकर्म में, उससे कम नाम कर्म में, नामकर्म के बराबर गोत्रकर्म में और गोत्रकर्म से कम आयुकर्म में बद्ध कर्मस्कन्ध के परमाणु बंट जाते हैं ।

प्रश्न ३५—इस बंटवारे को कौन करता है?

उत्तर—यह विभाग स्वयं हो जाता है, इस विभाग का भी कारण यही परिणाम है जो बन्ध का कारण है ।

जैसे भोजन करने के बाद पेट में जो आहार पहुंचा उसका कितना खून बने, कितना मल बने आदि बंटवारा स्वयं हो जाता है । उसका कारण कहा जा सकता है तो वही जठराग्नि ।

प्रश्न ३६—चारों प्रकार के बन्ध किस कारण से होते हैं?

उत्तर—प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध तो योग से होते हैं और स्थितिबन्ध एवं अनुभागबन्ध कषाय से होते हैं ।

प्रश्न ३७—योग किसे कहते हैं?

उत्तर—आत्मा के प्रदेशों के परिस्पन्द होने को योग कहते हैं ।

प्रश्न ३८—योग क्या आत्मा का स्वभाव है?

उत्तर—आत्मप्रदेशपरिस्पन्दरूप योग आत्मा का स्वभाव नहीं है, वह तो कर्मोंदयवश होता है । योगशक्ति अवश्य गुण या स्वभाव है, सो कर्मोदय से उसका परिस्पन्द परिणमन होता है और प्रतिनियत कर्मोदय के अभाव से व सर्वथा कर्मोदय के अभाव से उसका निष्क्रिय परिणमन होता है । निश्चयनय से शुद्ध आत्मप्रदेश निष्क्रिय होते हैं, व्यवहारनय से सक्रिय होते हैं ।

प्रश्न ३९—कषाय किसे कहते हैं?

उत्तर—जो आत्मा को कषे याने दुःख दे अथवा जो निर्दोष परमात्मतत्त्व की भावना का अवरोध करे उसे कषाय कहते हैं ।

प्रश्न ४०—इन बन्धों के स्वरूप जान लेने से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये?

उत्तर—ये बन्ध आत्मा के स्वभाव नहीं हैं और न आत्मा के हैं, ऐसा यथार्थ तत्त्व जानकर निज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिये ।

प्रश्न ४१—बन्ध के कारण जानकर हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये?

उत्तर—योग और कषाय से उक्त बन्ध होते हैं, अतः बन्ध के विनाश के अर्थ योग और कषाय का त्याग करते हुए शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना करनी चाहिये ।

प्रश्न ४२—योग और कषाय का त्याग किस प्रकार होगा?

उत्तर—मैं ध्रुव आत्मा निष्क्रिय और निष्कषाय हूँ, इस प्रकार को प्रीतिपूर्वक भावना से योग और कषाय की उपेक्षा होकर शुद्ध आत्मतत्त्व की अभिमुखता होती है । इस पुरुषार्थ के बल से योग और कषाय भी समुच्छिन्न हो जाता है ।

प्रश्न ४३—योग और कषाय में पहिले कौन नष्ट होता है?

उत्तर—पहिले कषाय नष्ट होती है पश्चात् योग नष्ट होता है । कषाय का सर्वथा नाश दसवें गुणस्थान के अन्त में हो जाता है ।

इस प्रकार बन्धतत्त्व का वर्णन करके अब संवरतत्त्व का वर्णन करते हैं—

गाथा ३४

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ।
सो भावसंवरो खलु दव्वस्सावणिरोहणो अण्णो ।।३४।।

अन्वय—जो चेदणपरिणामो कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ सो खलु भाव संवरो, दव्वस्सासवणिरोहणो अण्णो ।

अर्थ—जो चेतनपरिणाम कर्म के आस्रव के रोकने में कारण है वह निश्चय से भावसंवर । है और द्रव्यास्रव का रुक जाना द्रव्यसंवर है ।

प्रश्न १—क्या चेतन परिणाम आते हुए कर्मों को रोक देता है?

उत्तर—चेतनपरिणाम आते हुए कर्मों को तो नहीं रोकता है, किन्तु शुद्ध चेतनपरिणाम के निमित्त से कर्मों का आना आस्रव रुक जाता है याने कर्म आते ही नहीं हैं ।

प्रश्न २—शुद्ध चेतनपरिणाम की निष्पत्ति कैसे होती है?

उत्तर—अनादि अनन्त, अहेतुक, सहजानन्दमय, निष्प्रकाशमान, ध्रुव, कारणपरमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वभाव की भावना से शुद्ध चेतनपरिणाम की निष्पत्ति होती है ।

प्रश्न ३-—शुद्ध चैतन्यस्वभाव अनादि अनन्त कैसे है?

उत्तर—चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव सत् है । सत् की न आदि होती है और न अंत होता है, केवल परिणमन होता रहता है । यहाँ परिणमन पर दृष्टि नहीं है, क्योंकि परिणमन तो समयमात्र रहकर नष्ट होता रहता है, मैं आगे भी रहता हूँ । परिणमन समयमात्र को होता है, मैं उससे पहिले भी था, अत: मैं अनादि अनन्त हूँ ।

प्रश्न ४—शुद्ध चैतन्यस्वभाव अहेतुक कैसे है?

उत्तर—चैतन्यस्वभाव स्वतःसिद्ध है, वह किन्हीं कारणों से उत्पन्न नहीं हुआ । कारणों से उत्पन्न तो पर्याय होती है, क्योंकि प्रतिविशिष्ट पर्याय जो होती है वह पहिले नहीं थी । मैं अथवा चैतन्यस्वभाव पहिले नहीं था, ऐसा नहीं है । अत: मैं अहेतुक हूँ अथवा चैतन्यस्वभाव अहेतुक है ।

प्रश्न ५—चैतन्यस्वभाव सहजानन्दमय कैसे है?

उत्तर—चेतन में आनन्दगुण सहज है, स्वभावरूप है । आत्मा का न तो आनन्दगुण किसी अन्य द्रव्य से हुआ और न आनन्द का विकास किसी अन्य द्रव्य से होता है तथा शुद्ध चैतन्यस्वभाव की भावना में सहज अनुपम परम आनन्द प्रकट होता है, जिससे स्वभाव का पूर्ण साक्षात् परिचय मिलता है । अत: चैतन्यस्वभाव सहजानन्दमय है ।

प्रश्न ६—चैतन्यस्वभाव नित्य प्रकाशमान कैसे है?

उत्तर—चैतन्यस्वभाव दर्शनसामान्यात्मक है । यह स्वभाव तो नित्य प्रकाशमान है ही, किन्तु इसका प्रत्यय सम्यग्दृष्टि को होता है । व्यवहार में भी ज्ञानदर्शन का किसी न किसी रूप में विकास प्रत्येक जीव में रहता

है, वह चैतन्यस्वभाव का ही तो विकास है । अत: चैतन्यस्वभाव नित्य प्रकाशमान है ।

प्रश्न ७—चैतन्यस्वभाव ध्रुव क्यों है?

उत्तर—चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव अविनाशी है, सत् है । सत् का कभी विनाश नहीं होता । अत: चेतन अथवा चैतन्यस्वभाव ध्रुव है ।

प्रश्न ८—चैतन्यस्वभाव को कारणपरमात्मा क्यों कहते हैं ?

उत्तर—कार्यपरमात्मत्व याने शुद्ध पूर्ण विकास चैतन्यस्वभाव का ही परिणमन है, चैतन्यस्वभाव से ही प्रकट हुआ है, अत: सिद्ध परमात्मतत्त्व चैतन्यस्वभाव से प्रकट होने के कारण इस चैतन्यस्वभाव को कारणपरमात्मा कहते हैं ।

प्रश्न ९—अब संवर का परिणाम किस रूप है?

उत्तर—शुद्ध चेतनभाव रूप है याने अनाद्यनन्त, अहेतुक निज चैतन्यस्वभाव की भावना, उपयोग, अवलम्बन व सहज परिणतिरूप है ।

प्रश्न १०—द्रव्यसंवर किसे कहते हैं?

उत्तर—अब संवर के निमित्त से होने वाले नूतन द्रव्यकर्म के आने के अभाव को द्रव्यसंवर कहते हैं ।

प्रश्न ११—जो कर्म आ ही नहीं रहे हैं उनका संवर क्या?

उत्तर—कर्म पहिले आया करते थे वे चेतन के परिणामों के ही निमित्त से आया करते थे तो अब विरुद्ध चेतनभाव के प्रतिपक्षी शुद्ध चेतनभाव हैं सो पूर्व में आते थे, उसकी अपेक्षा से व अब वे विभावरूप चेतनभाव नहीं हो सकते जो द्रव्यास्रव के कारण बनते । इन सब दृष्टियों से संवर युक्तियुक्त सिद्ध हो जाता है ।

प्रश्न १२—१४८ कर्मप्रकृतियों का संवर क्या किसी से कम होता है या यथा तथा?

उत्तर—गुणविकास के याने गुणस्थान के अनुसार इन १४८ प्रकृतियों का संवर होता है ।

प्रश्न १३—मिथ्यात्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—मिथ्यात्व गुणस्थान में संवर तो नहीं होता है, किन्तु प्रायोग्यलब्धि के काल में ३४ बंधापसरण होते हैं ।

प्रश्न १४—बन्धापसरण और संवर में क्या अन्तर है?

उत्तर—बन्धापसरण तो मिथ्यात्वगुणस्थान में प्रायोग्यलब्धि के समय हो जाता है । वह मिथ्यादृष्टि यदि कारण लब्धि न कर सका तो प्रायोग्यलब्धि से गिरकर फिर इसी गुणस्थान में बन्ध करने लगता तथा यदि ऊपर गुणस्थानों में चढ़ा तो भी इनमें से कुछ प्रकृतियों का कुछ गुणस्थानों तक बन्ध करने लगता । किन्तु जिस प्रकृति का संवर जिस गुणस्थान में होता है उसमें व उससे ऊपर के सब गुणस्थानों में व अतीत गुणस्थान में कहीं भी उसका बन्ध नहीं हो सकता । ये बन्धापसरण अभव्य के भी हो सकते हैं, किन्तु संवर कभी नहीं होता ।

प्रश्न १५—ये ३४ बन्धापसरण किस प्रकार होते हैं?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्धि के बल से जब क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धि और देशनालब्धि प्राप्त करने के पश्चात् प्रायोग्यलब्धि में आता है तब वह केवल अन्त: कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति बांधता है अर्थात् एक कोड़ाकोड़ी सागर से कम स्थिति बांधता है तथा इसके बाद भी विशुद्धिबल से स्थितिबन्ध उत्तरोत्तर कम बांधता है । इन्हीं कम स्थितिबन्धों कि अवसरों में १-१ करके ३४ बन्धापसरण होते हैं अर्थात् उन प्रकृतियों की जिनका निर्देश अभी किया जायेगा बंधव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न १६—प्रथम बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—उक्त अन्त: कोड़ाकोड़ी सागर से भी कम-कम बन्ध होते-होते जब शत पृथक्त्व सागर (३०० से ९०० सागर के बीच) कम बन्ध होने लगता है तब नरकायु का बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न १७—द्वितीय बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—प्रथम बन्धापरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम-कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब तिर्यगायु का बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न १८—तृतीय बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—द्वितीय बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम-कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्व सागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब मनुष्यायु का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न १९—चतुर्थ बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—तृतीय बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब देवायु का बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न २०—पञ्चम बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—चतुर्थबन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम-कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब नरकगति व नरकगत्यानुपूर्व्य—इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २१—षष्ठ बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—पञ्चम बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम-कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्पर संयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्ति व साधारण, इन तीन प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २२-—सप्तम बंधापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—षष्ठ बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम-कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्पर संयुक्त सूक्ष्म, अपर्याप्ति, प्रत्येक शरीर । इन तीन प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न २३—अष्टम बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—सप्तम बंधापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बन्ध होते-होते जब शत पृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्पर संयुक्त, बादर, अपर्याप्ति, साधारण शरीर, इन तीन प्रकृतियों का बंधव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न २४—नवम बंधापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—अष्टम बंधापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध रह जाता है तब बादर, अपर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन तीन प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २५—दशम बंधापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—नवम बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बंध होते-होते जब शत पृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त द्वीन्द्रिय जाति व अपर्याति, इन दो प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २६—११वां बंधापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—दशम बंधापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बंध होते-होते जब शत पृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त त्रीन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति—इन दो प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २७—१२वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर-—११वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुंक्त चतुरिन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति, इन दोनों प्रकृतियों का बंधव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २८—१३वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—१२वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजाति व अपर्याप्ति—इन दोनों प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न २९—१४वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—१३वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जाति व अपर्याप्ति—इन दोनों प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद हों जाता है ।

प्रश्न ३०—१५वां बन्धापंसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—१४वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त सूक्ष्म, पर्याप्ति, साधारण शरीर इन तीन प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद हो

जाता है ।

प्रश्न ३१—१६वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—१५वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब सूक्ष्म, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, इन परस्परसंयुक्त तीन प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न ३२-—१७वां बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—१६वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब बादर, पर्याप्ति, साधारण शरीर, इन परस्परसंयुक्त तीन प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न ३३-—१८वां बन्धापसरण कब और, किसका होता हैं?

उत्तर-—१७वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब बादर, पर्याप्ति, प्रत्येकशरीर, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर, इन परस्परसंयुक्त छः प्रकृतियों का बन्धापसरण हो जाता है ।

प्रश्न ३४-—१९वां बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—१८वें बंधापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त द्वीन्द्रियजाति व पर्याप्ति, इन दो प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ३५—२०वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—१९वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त द्वीन्द्रियजाति व पर्याप्ति इन दोनों प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ३६—२१वां बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—२०वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब परस्परसंयुक्त चतुरिन्द्रियजाति व पर्याप्ति इन दो प्रकृतियों का बन्धापसरण हो जाता है ।

प्रश्न ३७—२२वां बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—२१वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जाति व पर्याप्ति इन परस्परसंयुक्त दोनों प्रकृतियों का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न ३८—असंज्ञी पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म तो कोई नहीं है?

उत्तर—प्रकृतियाँ सब १४८ ही नहीं हैं, उन १४८ प्रकृतियों के और भी आवान्तर भेद हो जाते हैं जो कि असंख्यात और अनन्त तक हो जाते हैं । असंज्ञी पंचेन्द्रिय जाति व सती पञ्चेन्द्रियजाति, ये दोनों पंचेन्द्रियजाति नामकर्म के भेद हैं ।

प्रश्न ३९—२३वा बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—२२वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य और उद्योत, इन तीन प्रकृतियों का एक साथ बन्धापसरण हो जाता है ।

प्रश्न ४०—२४वां बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—२३वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब नीच गोत्रकर्म का बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ४१—२५वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—२४वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम बन्ध हो जाता है तब अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दु:स्वर व अनादेय, इन चारों प्रकृतियों का एक साथ बंधापसरण हो जाता है ।

प्रश्न ४२—२६वां बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—२५वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब हुंडकसंस्थान व असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ४३—२७वाँ बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—२६वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम-कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब नपुंसकवेद का बन्धव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न ४४—२८वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—२७वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब वामनसंस्थान और कीलितसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ४५—२९वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—२८वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब कुब्जकसंस्थान व अर्द्धनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ४६—३०वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—२९वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब स्त्रीवेदमोहनीयकर्म का बंधव्युच्छेद होता है ।

प्रश्न ४७-—३१वां बंधापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—-३०वें बंधापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबंध हो जाता है तब स्वातिसंस्थान व नाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ४८—३२वां बन्धापसरण किसका और कब होता है?

उत्तर—३१वें बंधापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान व वज्रनाराचसंहनन, इन दोनों प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ४९—३३वाँ बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—३२वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबन्ध से कम बन्ध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक अङ्गोंपाङ्ग वज्रऋषभनाराचसंहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, इन पाँचों प्रकृतियों का एक साथ बंधव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ५०—३४व बन्धापसरण कब और किसका होता है?

उत्तर—३३वें बन्धापसरण में होने वाले स्थितिबंध से कम बंध होते-होते जब शतपृथक्त्वसागर कम स्थितिबन्ध हो जाता है तब असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयश:कीर्ति, इन छ: प्रकृतियों का एक साथ बन्धव्युच्छेद हो जाता है ।

प्रश्न ५१—यह ३४ बन्धापसरण कब तक रहते हैं?

उत्तर—इन ३४ बंधापसरणों को करने वाले जीव के या तो मिथ्यात्व गुणस्थान का अन्त हो जाये याने सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाये या प्रायोग्यलब्धि से पतन हो जाये, इससे पहिले तक ३४ बंधापसरण बने रहते हैं ।

प्रश्न ५२—सासादनसम्यक्त्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—सासादनसम्यक्त्व नामक दूसरे गुणस्थान में १६ प्रकृतियों का संवर होता है । वे १६ प्रकृतियां ये हैं—(१) मिथ्यात्व, (२) नपुंसकवेद, (३) नरकायु, (४) नरकगति (५) एकेन्द्रियजाति, (६) द्वीन्द्रियजाति, (७) त्रीन्द्रियजाति, (८) चतुरिन्द्रियजाति, (९) हुंडकसंस्थान, (१०) असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, (११) नरकगत्यानुपूर्व्य, (१२) आतप, (१३) साधारणशरीर, (१४) सूक्ष्म, (१५) अपर्याप्ति और (१६) स्थावर ।

प्रश्न ५३—सासादन सम्यक्त्व में इन १६ प्रकृतियों का संवर क्यों होता है?

उत्तर—इन १६ प्रकृतियों के आस्रव, बन्ध का कारण मिथ्यात्वभाव है । सासादनसम्यक्त्व में मिथ्यास्वभाव है नहीं, अतएव अशुभोपयोग की मन्दता होने से इन प्रकृतियों का यहाँ संवर होता है ।

प्रश्न ५४—मिश्रसम्यक्त्व गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—तीसरे गुणस्थान में ४१ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें से सोलह प्रकृतियाँ तो पूर्व संवृत हैं, बाकी २५ प्रकृतियां ये हैं—(१) निद्रानिद्रा, (२) प्रचलाप्रचला, (३) स्त्यानगृद्धि, (४) अनन्तानुबंधी क्रोध, (५) अन० मान, (६) अन० माया, (७) अन० लोभ, (८) स्त्रीवेद, (९) तिर्यगायु, (१०) तिर्यग्गति, (११) न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, (१२) स्वातिसंस्थान, (१३) वामनसंस्थान, (१४) कुब्जकसंस्थान, (१५) वज्रनाराचसंहनन, (१६) नाराचसंहनन, (१७) अर्द्धनाराचसंहनन, (१८) कीलकसंहनन, (१९) तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, (२०) उद्योत, (२१) अप्रशस्तविहायोगति, (२२) दुर्भग, (२३) दुःस्वर, (२४) अनादेय और (२५) नीचगोत्र ।

प्रश्न ५५—इन २५ प्रकृतियों का मिश्रसम्यक्त्व गुणस्थान में क्यों संवर होता?

उत्तर—इन पच्चीस प्रकृतियों के बन्ध का कारण अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय है । इस तीसरे गुणस्थान में अनन्तानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व नहीं हैं, अत: इन प्रकृतियों के आस्रव का कारण न होने से संवर हो जाता है ।

प्रश्न ५६—अनन्तानुबंधी कषाय यहाँ क्यों नहीं होती?

उत्तर—सम्यग्मिथ्यात्व परिणाम के होनेपर अशुभोपयोग की अत्यन्त मन्दता होने से अनन्तातुबन्धी कषाय हो नहीं सकती ।

प्रश्न ५७—अविरत सम्यक्त्वगुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—अविरत सम्यक्त्व नामक चौथे गुणस्थान में पूर्वोक्त ४१ प्रकृतियों का संवर होता है । यहाँ इस संवर का कारण सम्यक्त्वपरिणाम है । इस गुणस्थान में अनंतानुबंधी कषाय ४ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, इन सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय या क्षयोपशम के कारण अशुभोपयोग का अभाव हो जाता है और शुद्धोपयोगसाधक शुभोपयोग प्रकट हो जाता है ।

प्रश्न ५८—देशविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—देशविरत गुणस्थान में ५१ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें ४१ तो पूर्व संवृत हैं और १० प्रकृतियां ये हैं—(१-४) अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, (५) मनुष्यायु, (६) मनुष्यगति, (७) औदारिकशरीर, (८) औदारिक अङ्गोपाङ्ग, (९) वज्रऋषभनाराचसंहनन और (१०) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य ।

प्रश्न ५९—देशविरत में इन १० प्रकृतियों का संवर क्यों हो जाता है?

उत्तर—देशसंयम (संयमासंयम) का भाव होनेपर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ कषायें नहीं रह सकतीं । देशविरत परिणाम सम्यक्त्व होने पर ही मनुष्य तिर्यंच के होता है । सो इनके सम्यक्त्व होने के कारण आयु बन्धती है तो देवायु ही बन्धती है, अत: देशविरत देवगति सिवाय अन्य भवों में जाता नहीं है, अत: मनुष्यायु से सम्बन्ध रखने वाली ६ प्रकृतियों का भी संवर हो जाता है ।

प्रश्न ६०—सम्यक्त्व तो चौथे गुणस्थान में भी है, वहाँ इन ६ प्रकृतियों का संवर क्यों नहीं है?

उत्तर—चौथा गुणस्थान तो देव व नारकियों के भी होता है । सम्यग्दृष्टि देव या नारकी मरणकर देवगति में नहीं जा सकते हैं, ऐसा प्राकृतिक नियम है । वे मनुष्यगति में ही उत्पन्न होते हैं । अत: चौथे गुणस्थान में

इन ६ प्रकृतियों की संवर नहीं कहा । विशेष अपेक्षा से तो चौथे गुणस्थान के मनुष्य तिर्यञ्चों के आयु न बंधी हो तो सम्यक्त्व होने के कारण उनके भी देवायु ही बंधती है और इस तरह उस चतुर्थगुणस्थानवर्ती मनुष्यतिर्यञ्च के भी इन ६ प्रकृतियों का संवर होता है ।

प्रश्न ६१—प्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—प्रमत्तविरत गुणस्थान में ५५ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें ५१ तो पूर्व संवृत हैं और चार ये हैं—(१) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, (२) प्रत्याख्यानावरण मान, (३) प्रत्याख्यानावरण माया, (४) प्रत्याख्यानावरण लोभ ।

प्रश्न ६२—प्रमत्तविरत में इन ४ प्रकृतियों का संवर क्यों होता है?

उत्तर—प्रमत्तविरत गुणस्थान में सकलसंयम प्रकट हैं । सकलसंयम का परिणाम प्रकट होने पर सकलसंयम के प्रतिपक्षी इन ४ प्रकृतियों का आस्रव हो नहीं सकता ।

प्रश्न ६३—अप्रमत्तविरत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—अप्रमत्तविरत गुणस्थान में ६१ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें ५५ प्रकृतियां तो पूर्वसंवृत हैं और ६ प्रकृतियां ये हैं—(१) असातावेदनीय, (२) अरतिमोहनीय, (३) शोकवेदनीय, (४) अशुभनामकर्म, (५) अस्थिरनामकर्म और (६) अयश:कीर्तिनामकर्म ।

प्रश्न ६४—अप्रमत्तविरत में इन ६ प्रकृतियों का संवर क्यों हो जाता है?

उत्तर—अप्रमत्तविरत गुणस्थान में संज्वलनकषाय का उदय मन्द हो जाने से प्रमाद नहीं रहा । अप्रमत्तविरत अवस्था में इन छ: प्रकृतियों का आस्रव हो नहीं सकता ।

प्रश्न ६५—अपूर्वकरण में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—अपूर्वकरण गुणस्थान में ६२ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें से ६१ प्रकृतियां तो पूर्व संवृत हैं और एक प्रकृति देवायु है ।

प्रश्न ६६—आठवें गुणस्थान में देवायु का संवर क्यों होता है?

उत्तर—श्रेणी के परिणाम इतने निर्मल होते हैं कि उनके कारण श्रेणियों में किसी भी आयु का आस्रव नहीं होता । अन्य आयुकर्मों का तो संवर पहले, दूसरे व ५वें गुणस्थान में बता दिया था, शेष रही देवायु का यहाँ संवर हो जाता है ।

प्रश्न ६७—अनिवृत्तिकरण में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ९८ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें ६२ प्रकृतियां तो पूर्वसंवृत हैं और ६६ प्रकृतियां ये हैं—(१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) हास्य, (४) रति, (५) भय, (६) जुगुप्सा, (७) देवगति, (८) पंचेन्द्रियजाति, (९) वैक्रियक शरीर, (१०) वैक्रियक अंगोपांग, (११) आहारक शरीर, (१२) आहारकांगोपांग, (१३) औदारिक शरीर, (१४) औदारिकांगोपाग, (१५) निर्माण, (१६) समचतुरस्रसंस्थान,, (१७) स्पर्श, (१८) रस, (१९) गंध, (२०) वर्णनामकर्म, (२१) देवगत्यानुपूर्व्य, (२२) अगुरुलघु, (२३) उपघात,

(२४) परघात, (२५) उच्छ्वास, (२६) प्रशस्तविहायोगति, (२७) प्रत्येकशरीर, (२८) त्रस, (२९) वादर, (३०) पर्याप्ति, (३१) शुभ, (३२) सुभग, (३३) सुस्वर, (३४) स्थिर, (३५) आदेयनामकर्म, (३६) तीर्थङ्करनामकर्म ।

प्रश्न ६८—नवमे गुणस्थान में ३६ प्रकृतियों का क्यों संवर है?

उत्तर—उपशमक अथवा क्षपक अनिवृत्तिकरण परिणामों की विशेषता के कारण उक्त प्रकृतियों का संवर है । अपूर्वकरण परिणामों में भी उत्तरोत्तर विशेषता थी, जिसके कारण अपूर्वकरण गुणस्थान में ही कुछ समय पश्चात् उक्त ३६ प्रकृतियों में से २ और कुछ समय पश्चात् ३० प्रकृतियों का संवर हो गया था ।

प्रश्न ६९—सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—दसवें गुणस्थान में १०३ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें ९८ प्रकृतियां तो पूर्व संवृत हैं व ५ प्रकृतियां ये हैं—(१) संज्वलन क्रोध, (२) संज्वलन मान, (३) संज्वलन माया, (४) संज्वलन लोभ, (५) पुरुषवेद ।

प्रश्न ७०—दसवें गुणस्थान में इन ५ प्रकृतियों का संवर क्यों है?

उत्तर—सूक्ष्मलोभ के अतिरिक्त सर्वकषायों के अभाव से मोहनीयकर्म की अवशिष्ट, इन ५ प्रकृतियों का संवर होता है । अनिवृत्तिकरण परिणामों की विशेषता से भी उक्त ५ प्रकृतियों में से अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग में पुरुषवेद, तीसरे भाग में संज्वलनक्रोध, चौथे भाग में संज्वलन मान, पांचवें भाग में संज्वलन माया नामक मोहनीयकर्म का संवर हो गया था ।

प्रश्न ७१—उपशान्तमोह में कितनी प्रकृतियों का संवर है?

उत्तर—उपशान्तमोह नामक ग्यारहवें गुणस्थान में ११९ प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें १०३ प्रकृतियां तो पूर्वसंवृत हैं, शेष १६ प्रकृतियां ये हैं—(१) मतिज्ञानावरण, (२) श्रुतज्ञानावरण, (३) अवधिज्ञानावरण, (४) मन:पर्ययज्ञानावरण, (५) केवलज्ञानावरण, (६) चक्षुर्दर्शनावरण, (७) अचक्षुर्दर्शनावरण, (८) अवधिज्ञानावरण, (९) केवलदर्शनावरण, (१०) यश:कीर्तिनामकर्म, (११) उच्चगोत्रकर्म, (१२) दानान्तराय, (१३) लाभान्तराय, (१४) भोगान्तराय, (१५) उपभोगान्तराय और (१६) वीर्यान्तराय ।

प्रश्न ७२—उपशान्तमोह में उक्त १६ प्रकृतियों का संवर क्यों होता है?

उत्तर—समस्त मोह के अभाव से होने वाली वीतरागता के कारण केवल सातावेदनीय को छोड़कर सर्वप्रकृतियों का संवर हो जाता है ।

प्रश्न ७३—यहाँ सातावेदनीय का संवर क्यों नहीं होता?

उत्तर—यद्यपि वीतरागता हो गई, किन्तु योग का सद्भाव है । कारण याने योगों के सद्भाव से सातावेदनीय का ईर्यापथ आस्रव होता है ।

प्रश्न ७४—उपशान्तमोह में सातावेदनीय का ईर्यापथ आस्रव क्यों है?

उत्तर—साम्परायिक आस्रव कषाय होनेपर ही होता है । योग से आस्रव तो होता है, किन्तु आकर तुरन्त खिर जाता है । कषाय न होने से स्थितिबंध नहीं होता । अत: उपशान्तमोह में केवल सातावेदनीय का

ईर्यापथ आस्रव है ।

प्रश्न ७५—क्षीणमोह में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—क्षीणमोह गुणस्थान में भी उक्त प्रकार से ११९ प्रकृतियों का संवर होता है ।

प्रश्न ७६—सयोगकेवली में कितनी प्रकृतियों का संवर होता है?

उत्तर—सयोगकेवली गुणस्थान में भी उक्त ११९ प्रकृतियों का संवर है ।

प्रश्न ७७—अयोगकेवली गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर है?

उत्तर—अयोगकेवली गुणस्थान में १२० प्रकृतियों का संवर होता है । इनमें ११९ तो पूर्व संवृत हैं और एक सातावेदनीय का भी संवर होता है ।

प्रश्न ७८-—यहाँ सातावेदनीय का संवर क्यों हो जाता है?

उत्तर—योग का अभाव रहने से यहाँ अवशिष्ट सातावेदनीय का संवर होता है ।

प्रश्न ७९—शेष २८ प्रकृतियों का कहां संवर होता है?

उत्तर—शेष २८ प्रकृतियों में २ तो दर्शनमोहनीय हैं—(१) सम्यग्मिथ्यात्व और (२) सम्यक्प्रकृति । ५ बन्धननामकर्म हैं, ५ संघातनामकर्म हैं, ६ स्पर्शादि सम्बन्धी हैं । इनमें ते सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति का तो आस्रव ही नहीं होता, इसलिये उनके संवर का वहाँ प्रश्न ही नहीं है । ५ बन्धन, ५ संघातनामकर्मों का शरीर में अन्तर्भाव किया है, सो जहां शरीरनामकर्मों का संवर होता है नहीं उसी नाम वाले बन्धन व संघातनामकर्मों का संवर होता है ।

स्पर्शादि नामकर्म २० हैं, उन्हें मूल नाम से ४ मानकर ४ का संवर बताया है । इस तरह १६ नम्बर कम रहते थे, सो जहाँ (नवमें गुणस्थान में) इन ४ का संवर बताया तो २० का ही संवर समझना ।

प्रश्न ८०—अतीतगुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का संवर है?

उत्तर—अतीतगुणस्थान में (सिद्ध भगवान) में समस्त कर्म प्रकृतियों का सदा के लिये संवर रहता है । क्योंकि अत्यन्त निर्मल, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से मुक्त सर्वथा शुद्ध वहाँ शुद्धोपयोग बर्तता रहता है ।

प्रश्न ८१—संवर की विशेषता में क्या उपयोग की विशेषता कारण नहीं है?

उत्तर—उपयोग की विशेषता का भी कारण मोह का भाव व अभाव है । संवरप्रदर्शक उपयोग के प्रकार से भी मोह का तारतम्य व अभाव समझना चाहिये ।

प्रश्न ८२—उपयोग के कितने प्रकार हैं?

उत्तर—उपयोग के ३ प्रकार हैं—(१) अशुभोपयोग, (२) शुभोपयोग और (३) शुद्धोपयोग ।

प्रश्न ८३—अशुभोपयोग किन गुणस्थानों में हैं?

उत्तर—मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व और मिश्रसम्यक्त्व, इन तीन गुणस्थानों में ऊपर ऊपर मन्द-मन्द रूप से होता हुआ अशुभोपयोग है ।

प्रश्न ८४—शुभोपयोग किन गुणस्थानों में है?

उत्तर—अविरतसम्यक्त्व, देशविरत और प्रमत्तविरत, इन तीन गुणस्थानों में ऊपर-ऊपर शुद्धोपयोग की साधकता के विशेष से होता हुआ शुभोपयोग है ।

प्रश्न ८५—शुद्धोपयोग किन गुणस्थानों में हैं?

उत्तर—शुद्धोपयोग दो प्रकारों में होता है—(१) एकदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग, (२) सर्वदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग । इनमें से एकदेशनिरावरणरूप शुद्धोपयोग अप्रमत्तविरत गुण स्थान से लेकर क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान तक ऊपर-ऊपर बढ़ती हुई निर्मलता को लिये हुए होता है ।

प्रश्न ८६—इसे एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग क्यों कहते हैं?

उत्तर—इस शुद्धोपयोग में शुद्ध चैतन्यस्वभावस्वरूप निज आत्मा ध्येय रहता है और इसका आलम्बन भी होता है । इस कारण यह उपयोग शुद्धोपयोग तो है, किन्तु केवल ज्ञानरूप शुद्धोपयोग की तरह शुद्ध नहीं है, अत: इसे एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग कहते हैं ।

प्रश्न ८७—सर्वदेशनिरावरण अथवा शुद्धोपयोग किन गुणस्थानों में से होता है?

उत्तर—सर्वदेशनिरावरण अथवा पूर्ण शुद्धोपयोग सयोगकेवली व अयोगकेवली, इन दो गुणस्थानों में तथा अतीत गुणस्थान में पूर्ण शुद्धोपयोग होता है । इस पूर्ण शुद्धोपयोग का कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग है ।

प्रश्न ८८—पूर्णशुद्धोपयोग का कारण एकदेशशुद्धोपयोग क्यों है?

उत्तर—अशुद्धपर्याय वाले आत्मा को शुद्ध होना है । अशुद्ध के अवलम्बन से अशुद्धता और शुद्ध के अवलम्बन से शुद्धता प्रकट होती है । यह आत्मा अभी तो शुद्ध है नहीं, फिर किसके अवलम्बन से शुद्धता प्रकट हो? तथ्य यहाँ यह है कि आत्मा स्वभावदृष्टि या द्रव्यदृष्टि से एक स्वरूप चैतन्यमात्र जाना जाता है । वह स्वभाव न सकषाय है, न अकषाय है, ऐसा स्वभावमात्र शुद्ध है । इस शुद्ध आत्मतत्त्व का जो उपयोग है यह पुरुषार्थ उत्तरोत्तर दृढता से शुद्ध का उपयोग करता हुआ स्वयं शुद्ध उपयोग हो जाता है । वह शुद्ध तत्त्व का उपयोग पूर्ण शुद्धोपयोग तो है नहीं और अशुद्धोपयोग भी नहीं, किन्तु शुद्ध तत्त्व का भाव, आलम्बन शुद्धता के यथायोग्य परिणमन के कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग कहा जाता है ।

प्रश्न ८९—मुक्ति का कारण कौनसा उपयोग है?

उत्तर—मुक्ति का कारण एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग है, क्योंकि पूर्ण शुद्धोपयोग तो मुक्तिरूप ही है और अशुभोपयोगरूप मोक्ष का कारण नहीं हो सकता तथा मिथ्यात्व के साथ रहने वाला शुभोपयोग भी शुद्धोपयोग का कारण हो नहीं सकता । अत: एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ही मुक्ति का कारण है ।

प्रश्न ९०—शुद्धोपयोग साधक शुभोपयोग जो कि चौथे गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक कहा गया है वह मुक्ति का कारण है कि नहीं?

उत्तर—इस शुभोपयोग में शुद्ध आत्मतत्त्व की प्रतीति तो निरन्तर है और शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना व अवलम्बन भी यथासमय अल्प समय को होती रहती है । अत: यहाँ भी एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग पाया जाता है, किन्तु यहाँ शुद्ध आत्मतत्त्व के अवलम्बन की स्थिति कदाचित् हीने से शुभोपयोग की मुख्यता है ।

वस्तुत: तो यहाँ भी रहने वाला एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग और शुद्धात्मतत्त्व की प्रतीतिरूप शुद्धोपयोग मुक्ति का कारण है ।

प्रश्न ९१—साक्षात् मुक्ति का कारण कौनसा उपयोग है?

उत्तर—उत्कृष्ट एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग मुक्ति का कारण है । उससे पहिले के समस्त एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग परम्परया मुक्ति के कारण हैं अथवा उनके पश्चात् ही उत्तर समय में होने वाली एकदेश मुक्ति के कारण हैं ।

प्रश्न ९२—तब तो एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ही उपादेय व ध्येय होना चाहिये ?

उत्तर—एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग क्षायोपशमिक भाव है, वह स्वयं शुद्ध भाव नहीं है, किन्तु शुद्धाशुद्धरूप है, अपूर्ण है । यह ध्येय अथवा उपादेय नहीं है । एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग का विषयभूत अखण्ड, सहजनिरावरण परमात्मस्वरूप ध्येय और उपादेय है, खण्डज्ञान रूप यह एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग ध्येय व उपादेय नहीं है । इस अपूर्ण शुद्धोपयोग के ध्यान से यह एकदेशनिरावरण शुद्धोपयोग होता भी नहीं है ।

प्रश्न ९३—इस उक्त समस्त वर्णन से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये?

उत्तर—परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत अखण्ड निजस्वभाव की दृष्टि करके अपने आपकी इस प्रकार स्वरूपाचरण सहित भावना होनी चाहिये—मैं सर्व अन्य पदार्थों से अत्यन्त जुदा हूँ, अपने ही गुणों में तन्मय हूँ, त्रैकालिक चैतन्यस्वभावमय हूँ, स्वतःसिद्ध हूँ, अनादि शुद्ध हूँ, सहजसिद्ध हूँ, निरंजन हूँ, ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ इत्यादि ।

प्रश्न ९४—आत्मा के शुद्धस्वरूप की भावना का क्या फल है?

उत्तर—शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना, आश्रय से निर्मल पर्याय प्रकट होता है जो कि सहज आनन्द का पुञ्ज है ।

प्रश्न ९५—संसार-अवस्था में आत्मा शुद्ध तो है नहीं, फिर असत्य की भावना मोक्षमार्ग कैसे हो सकता?

उत्तर—सामान्य स्वभाव, द्रव्यदृष्टि से परखा गया स्वभाव आत्मा में अन्त: सदा प्रकाशमान है । वह तो अन्योपयोग से तिरोभूत हुआ था, किन्तु इस ही के उपयोग में यह स्वभाव प्रत्यक्ष हो जाता है ।

इस प्रकार संवर के लक्षणों का वर्णन करके भावसंवर के कारणरूप भावसंवर के भेदों को कहते हैं—

गाथा ३५

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य ।
चारित्तं वहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ।।३५।।

अन्वय—वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहापरीसहजओ य चारित्तं वहुभेया भावसंवर विसेसा णायव्वा ।

अर्थ—व्रत समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र बहुत भेद वाले ये सब भावसंवर के विशेष जानना चाहिये ।

प्रश्न १—व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर—शुद्ध चैतन्यस्वभावमय निज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना से शुभ अशुभ समस्त रागादि विकल्पों की निवृत्ति हो जाना व्रत है ।

प्रश्न २—इस व्रत की साधना के उपाय क्या हैं?

उत्तर—व्रतसाधन के उपायभूत व्यवहारव्रत ५ प्रकार के है—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अचौर्य, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह ।

प्रश्न ३—अहिंसाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर—अपने व परप्राणियों के प्राणों का घात नहीं करना, पीड़ा नहीं पहुंचाना तथा संक्लेश व दुर्भाव नहीं करना, सो अहिंसाव्रत है ।

प्रश्न ४—सत्यव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर—स्वपर के अहित करने वाले विपरीत वचन नहीं बोलना और न ऐसे वचन बोलने का भाव करना, सो सत्यव्रत है ।

प्रश्न ५—अचौर्यव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी की अधिकृत वस्तु की उसकी हार्दिक स्वीकृति के बिना न लेने और किसी भी परपदार्थ को अपना न समझने को अचौर्यव्रत कहते हैं ।

प्रश्न ६—ब्रह्मचर्यव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर—मैथुन के परित्याग करने व तद्विषयक सभी प्रकार की वान्छावों के न करने को ब्रह्मचर्यव्रत कहते हैं ।

प्रश्न ७—अपरिग्रहव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर—हिंसा के परिहार के लिये कोमल पीछी, शुद्धि के लिये कमण्डल व ज्ञानवृद्धि के लिये २-१ पुस्तक के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की वस्तु न रखने और समस्त परपदार्थों में मूर्च्छा (ममत्व) न करने को अपरिग्रहव्रत कहते हैं ।

प्रश्न ८—ये ५ प्रकार के व्रत भावसंवर के विशेष क्यों हैं?

उत्तर—इन पाँच प्रकार के व्रतों के आचरण से शुद्धोपयोग की साधना सुगम है, अत: ये भावसंवर के विशेष हैं । यदि व्रतों के पालन के विकल्प तक ही परिणाम हों तो वह भावसंवर नहीं हें, किन्तु शुभ आस्रव हैं ।

प्रश्न ९—समिति किसे कहते हैं?

उत्तर—चैतन्यस्वभावमय निज परमात्मतत्त्व में सम सम्यक् भले प्रकार से अर्थात् रागादिनिरोधपूर्वक स्वभावलीनता से पहुंचने को समिति कहते हैं ।

प्रश्न १०—इस समिति के साधना के अर्थ व्यावहारिक कर्तव्य क्या हैं?

उत्तर—समितिसाधन के उपायभूत व्यवहारसमिति ५ हैं—(१) ईर्यासमिति, (२) भाषासमिति, (३) ऐषणासमिति, (४) आदाननिक्षेपणसमिति और (५) प्रतिष्ठापनासमिति ।

प्रश्न ११—ईर्यासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर—समुचित कर्म के लिये सूर्यप्रकाश में चार हाथ आगे जमीन देखते हुए उत्तम भावसहित चलने को ईर्यासमिति कहते हैं ।

प्रश्न १२—भाषासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर—हित मित प्रिय वचन बोलने को भाषासमिति कहते हैं ।

प्रश्न १३—ऐषणासमिति किसे कहते हैं?

उत्तर-—आत्मचर्या की साधना का भाव रखने वाले साधु की ४६ दोषरहित व १४ मलरहित एवं अध:कर्म और दोषरहित तथा ३२ अन्तराय टालकर निर्दोष आहार करने की चर्या को ऐषणासमिति कहते हैं ।

प्रश्न १४—आहारसम्बन्धी ४६ दोष कौन-कौन होते हैं ।

उत्तर—उद्गमदोष १६, उत्पादनदोष १६, अशनदोष १०, मुक्तिदोष ४, इस प्रकार ४६ दोष आहारसम्बन्धी होते हैं ।

प्रश्न १५—उद्गमदोष कौन-कौन हैं?

उत्तर—(१) उद्दिष्ट, (२) साधिक, (३) पूति, (४) मिश्र, (५) प्राभृत, (६) बलि, (७) न्यस्त, (८) प्रादुष्कृत, (९) क्रीत, (१०) प्रामित्य, (११) परिवर्तित, (१२) निषिद्ध, (१३) अभिहृत, (१४) उद्भिन्न, (१५) आच्छेद्य, (१६) आरोह-—ये १६ उद्गमदोष हैं ।

प्रश्न १६—उद्दिष्टदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी भी बेश वाले गृहस्थों, सर्व पाखण्डियों, सर्वपार्श्वस्थों या सर्वसाधुवों के उद्देश्य से बनाये हुए भोजन को उद्दिष्ट कहते हैं ।

प्रश्न १७—उद्दिष्ट में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—श्रावक की प्रवृत्ति अतिथिसंविभाग की होती है । श्रावक अपने आहार को स्वयं इस प्रकार बनाता है कि वह एक पात्र को दान देकर भोजन किया करे । मुनि इस प्रकार श्रावक के लिये बने हुए भोजन का

अधिकारी हो सकता है । इसके विपरीत बने हुए भोजन में आरम्भ विशेष होने से उस उद्दिष्ट भोजन के आहार में सावद्य का दोष हो जाता है ।

प्रश्न १८—साधिक दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—यदि दाता अपने लिये पकते हुये भोजन में मुनियों को दान देने के अभिप्राय से और अन्नादि डाल देने को साधिक दोष कहते हैं अथवा भोजन तैयार होने में देर हो तो पूजा या धर्मादिक प्रश्न के छल से साधु के रोक लेने को साधिक दोष कहते हैं ।

प्रश्न १९—साधिक में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इस आरम्भ में भी साधु का निमित्त हो जाने का दोष हो जाता है ।

प्रश्न २०—पूति दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—पूति दोष के दो प्रकार है (१) अप्रासुमिश्रण, (२) पूतिकर्मकल्पना । प्रासुक वस्तु में अप्रासुक वस्तु मिला देने को अप्रासुमिश्रण कहते हैं और ऐसी कल्पना करने को कि इस बर्तन द्वारा अथवा इस बर्तन में पके हुए भोजन का या अमुक भोजन का दान जब तक साधुवों को न हो जाये तब तक इसका उपयोग नहीं किया जाये पूतिकर्मकल्पना दोष कहते हैं । इसी तरह चक्की, ओखली, जूता आदि के सम्बन्ध में भी कल्पना करने को भी पूतिकर्मकल्पना दोष कहते हैं ।

प्रश्न २१—पूति में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इसमें अप्रासुमिश्रण में तो हिंसा का दोष तथा पूतिकर्मकल्पना में साधु के निमित्त के सम्बन्ध का दोष हो जाता है ।

प्रश्न २२—मिश्रदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रासुक भी आहार हो तो भी यदि पाखंडियों और गृहस्थों के साथ-साथ साधुवों को देने की बुद्धि से बनाया हुआ भोजन हो तो उसे मिश्रदोष सहित कहते हैं ।

प्रश्न २३—इस मिश्र में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इसमें असंयमियों से स्पर्श, दीनता व अनादर आदि होने का दोष हो जाता है ।

प्रश्न २४—प्राभृत दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—प्राभृत दोष दो प्रकार के होते हैं—एक तो वादरप्राभृत और दूसरा सूक्ष्मप्राभृत ।
ऐसा संकल्प करके कि मैं अमुक माह आदि की अमुक तिथि को अतिथिसंविभागव्रत पालूंगा, फिर उस तिथि के बदले पहिले या बाद में दान देना, सो वादरप्राभृत दोष है । ऐसा संकल्प करके कि दिन के पूर्वभाग में उत्तरभाग में पात्र दान करूंगा, फिर उस समय के बाद या पहिले पात्र दान करना सूक्ष्मप्राभृत दोष है ।

प्रश्न २५—प्राभृतदोष में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इस वृद्धि हानि से परिणामों की संक्लेशता उत्पन्न हो जाती है ।

प्रश्न २६—बलिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—यक्ष पित्रादि देवता के लिये बनाये हुये आहार में से बचा हुआ आहार यतियों को देना बलिदोष है तथा बचे हुये अर्घ्य जलादिक से यतियों की पूजा करना बलिदोष है ।

प्रश्न २७—बलिदोष में किस दोष की सिद्धि है ।

उत्तर—इसमें सावद्य दोष की सिद्धि है ।

प्रश्न २८—न्यस्त दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस बर्तन में भोजन बनाया गया हो, उसमें से निकालकर कटोरी आदि में रखकर अपने घर या परगृह कहीं रख देने को न्यस्त दोष कहते हैं ।

प्रश्न २९—न्यस्त में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इसमें दो दोष हो जाते हैं-—एक तो नया आरम्भ हुआ और फिर उसमें से यदि कोई दूसरा दातार उसको दे तो उसमें गड़बड़ी भी हो सकती है ।

प्रश्न ३०—प्रादुष्कृत दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रादुष्कृत दोष दो प्रकार से होता है—(१) संक्रम, (२) प्रकाश । साधु के घर आ जाने पर भोजन के पात्र आदि को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना, सो संक्रम प्रादुष्कृत है । साधु के घर आ जाने पर किवाड़ मंडप आदि दूर करना, भस्म या जलादिक से बर्तनादि को साफ करना, दीपक जलाना आदि प्रकाश दोष है ।

प्रश्न ३१—प्रादुष्कृत में दोष किस कारण से है?

उत्तर—इसमें नैमित्तिक आरम्भ व ईर्यापथादिक में हानि का दोष आता है ।

प्रश्न ३२—क्रीत दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—जब साधु भिक्षा के अर्थ घर आवे तब गौ आदिक सचित द्रव्य या सुवर्ण चांदी आदि अचित्त द्रव्य देकर भोजन लाया जावे, उसे क्रीत दोष कहते हैं ।

प्रश्न ३३—क्रीत दोष में क्या हानि होती हे?

उत्तर—इसमें नैमित्तिक आरम्भ व विकल्पों का बाहुल्य होता है ।

प्रश्न ३४—प्रामित्य दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रामित्य दोष दो प्रकार का होता है—(१) वृद्धिमत् और (२) अवृद्धिमत् । ब्याज पर उधार लाये हुये अन्न को वृद्धिमत् प्रामित्य कहते हैं और बिना ब्याज के उधार लाये अन्न को अवृद्धिमत् प्रामित्य कहते हैं । इन दोनों प्रकार के प्रामित्य के आहार देने को प्रामित्य दोष कहते हैं ।

प्रश्न ३५—प्रामित्य के आहार में क्या दोष हुआ?

उत्तर—उधार लाने और उसके चुकाने में दाता को अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, ऐसा कष्टसाध्य आहार मधुर की वृत्ति वाले साधु के अयोग्य है । ऐसा आहार करने में अदया का दोष उत्पन्न होता है ।

प्रश्न ३६—परिवर्तित दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—भिक्षार्थ साधु के आने पर किसी से किसी भोज्य पदार्थ के बदले में कोई अन्य भोज्य पदार्थ लेने को परिवर्तित दोष कहते हैं ।

प्रश्न ३७—परिवर्तित आहार में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इसमें भी दाता को संक्लेश होता है, अत: उस आहार में भी अदया का दोष उत्पन्न हो जाता है ।

प्रश्न ३८—निषिद्ध दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—कोई चीज किसी के मना करने पर भी साधुवों को आहार के लिये दी जावे तो उसे निषिद्ध दोष कहते हैं । निषेधकों के भेद से इसके ६ भेद हो जाते हैं । निषेधक ६ प्रकार के ये हैं—(१) व्यक्त ईश्वर, (२) अव्यक्त ईश्वर, (३) उभय ईश्वर, (४) व्यक्त अनीश्वर, (५) अव्यक्त अनीश्वर, (६) उभय अनीश्वर । निरपेक्ष अधिकारी को व्यक्तईश्वर व सापेक्ष अधिकारी को अव्यक्तईश्वर व सापेक्ष निरपेक्ष अधिकारों को या संयुक्त व्यक्तियों को उभयईश्वर कहते हैं । इसी प्रकार अनीश्वर (अनधिकारी) याने नौकर आदि में भी लगाना ।

प्रश्न ३९—निषिद्ध में क्या दोष आता है?

उत्तर—दीनता, अशिष्टता आदि अनेक दोष आते हैं ।

प्रश्न ४०-—अभिहृत दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—लाइन में स्थित सात मकानों को (एक दाता का व तीन एक ओर के) व तीन दूसरी ओर के छोड़कर बाकी अन्य किसी स्थान से चाहे मौहल्ला हो या गांव हो या परगाँव या परदेश, आये भोज्य पदार्थों को अभिकृत कहते हैं । अभिहृत पदार्थों के आहार को अभिहृत दोष कहते हैं ।

प्रश्न ४१—अभिहृत आहार में क्या दोष आता है?

उत्तर-—इसमें ईर्यापथशुद्धि नहीं हो सकती है, अत: जीवहिंसा का दोष आता है ।

प्रश्न ४२—उद्भिन्न दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—घी, गुड़, किशमिश आदि कोई वस्तु किसी डिब्बे आदि में पैक हो, डिब्बे का मुख मिट्टी आदि से बन्द हो या सील, मोहर लगी हो उसे खोलकर उस चीज के देने को उद्भिन्न दोष कहते हैं ।

प्रश्न ४३—उद्भिन्न आहार में क्या दोष है?

उत्तर-—इसमें जीवदया की सावधानी नहीं हो सकती व तुरन्त खोलकर देने में उस वस्तु का शोधन भी ठीक नहीं हो सकता, चींटी आदि का प्रवेश हो तो उसका वारण कठिन है ।

प्रश्न ४४—आच्छेद्य दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—राजा, मंत्री आदि बड़े पुरुषों के भय से श्रावक आहारदान करे तो उसे आच्छेद्य दोष कहते हैं ।

प्रश्न ४५-—आच्छेद्य में क्या दोष होता है?

उत्तर—जबरदस्ती बिना अनुराग का भोजन लिये जाने का दोष आता है, यह गृहस्थ के संक्लेश का कारण है ।

प्रश्न ४६—मालारोहण दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—सीढ़ी अथवा नसैनी पर चढ़कर अटारी वगैरह ऊपर के खण्ड से भोज्य पदार्थ लाकर साधुवों को देने को मालारोहण दोष कहते हैं ।

प्रश्न ४७—मालारोहण में क्या दोष हो जाता है?

उत्तर—इसमें ईर्यापथशुद्धि नहीं रहती व गृहस्थ के विक्षेप होता है, उसके गिरने तक की भी संभावना रहती है । इसमें अदया का दोष होता है ।

प्रश्न ४८—उक्त १६ उद्गमदोष किसकी चेष्टा के निमित्त से होते हैं?

उत्तर—उक्त १६ उद्गमदोष दातार श्रावक की चेष्टा के निमित्त से होते हैं । दातार श्रावक को चाहिये कि ये १६ उद्गमदोष को टालकर साधु को आहार देवे । यदि साधु को मालूम हो जावे कि दातार ने इन १६ उद्गमदोषों में से कोई दोष किया है तो साधु उस आहार को नहीं लेते हैं ।

प्रश्न ४९—उद्गम शब्द का निरुक्त्यर्थ क्या है?

उत्तर—उत् = उन्मार्ग, गम = गमन कराये याने ले जाये, जो उन्मार्ग की ओर ले जाये उसे उद्गम कहते हैं । तात्पर्य—जिन क्रियाओं के द्वारा भोज्य द्रव्य उन्मार्ग अर्थात् आगम की आज्ञा के विरुद्ध याने रत्नत्रय की घातक सिद्ध हो, ऐसी दाता की क्रियाओं को उद्गमदोष कहते हैं ।

प्रश्न ५०—उत्पादन दोष १६ कौन-कौन से हैं?

उत्तर—उत्पादन दोष ये हैं—(१) धात्रीदोष, (२) दूतदोष, (३) निमित्तदोष, (४) वनीपकवचनदोष, (५) आजीवदोष, (६) क्रोधदोष, (७) मानदोष, (८) मायादोष, (९) लोभदोष, (१०) पूर्वस्तुतिदोष, (११) पश्चात्स्तुतिदोष, (१२) वैद्यकदोष, (१३) विद्यादोष, (१४) मंत्रदोष, (१५) पूर्णदोष, (१६) वशदोष ।

प्रश्न ५१—धात्रीदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—पाँच प्रकार की धात्रियों में से किसी भी धात्री जैसा गृहस्थ के बालक के प्रति प्रयोग करके या प्रयोग कराकर अथवा उपदेश देकर इस कारण से अनुरक्त गृहस्थ के द्वारा दिये हुये भोजन को ग्रहण करना धात्रीदोष है ।

प्रश्न ५२—धात्रीदोष में दोष क्या आया?

उत्तर—इसमें साधु का यह अभिप्राय रहता है कि इस रीति से गृहस्थ भोजन देने को अथवा उत्तम भोजन देने को उत्साहित होगा । यह अभिप्राय साधुता में बड़ा दोषरूप है ।

प्रश्न ५३—पांच प्रकार की धात्री कौन-कौन हैं?

उत्तर—धात्री के पाँच भेद ये है—(१) मार्जनधात्री, (२) क्रीडनधात्री, (३) मंडनधात्री, (४) क्षीरधात्री, (५) स्वापनधात्री, ।

प्रश्न ५४—मार्जनधात्री, किसे कहते हैं?

उत्तर—जो बालक को स्नान कराने का कार्य करके बालक का पोषण करे उसे मार्जनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५५—क्रीडनधात्री किसे कहते हैं?

उत्तर—जो बालक को नाना प्रकार से क्रीडा करावे उसे क्रीडनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५६—मंडनधात्री किसे कहते हैं?

उत्तर—जो बालक को यथोचित भूषण आभूषण द्वारा अलंकृत करे उसे मंडनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५७—क्षीरधात्री किसे कहते हैं?

उत्तर—जो बालक को दूध पिलाकर पुष्ट करे उसे क्षीरधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५८—स्वापनधात्री किसे कहते हैं?

उत्तर—जो बालक को सुलाने की सेवा करे उसे स्वापनधात्री कहते हैं ।

प्रश्न ५९—दूतदोष किसे कहते है?

उत्तर—सम्बन्धी पुरुषों का सन्देश ले जाकर, कहकर संतुष्ट किये गये दाता के द्वारा दिये हुये भोजन का लेना सो दूतदोष है ।

प्रश्न ६०—इसमें क्या दोष आता है?

उत्तर—इस दूतदोष नाम का दूसरे उत्पादन दोष में साधु के इस उपाय से भोजन उपार्जन करने का भाव रहता है व जिनशासन में दूषण लगता है ।

प्रश्न ६१—निमित्तदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—अष्टांगनिमित्त के ज्ञान को बताकर व उसके फल को बताकर संतुष्ट किये गये दाता के द्वारा दिये गये आहार के करने को निमित्तदोष कहते हैं ।

प्रश्न ६२—भविष्यफल के निर्देशक निमित्त के आठ अङ्ग कौन से है?

उत्तर—भविष्यफल के निर्देशक निमित्त के आठ अंग ये हैं—(१) व्यञ्जन, (२) अंग (३) स्वर, (४) छिन्न, (५) भौम, (६) अन्तरिक्ष, (७) लक्षण और (८) स्वप्न ।

प्रश्न ६३—व्यञ्जन निमित्त किसे कहते हें?

उत्तर—शरीर के किसी अंग में तिल, मस्सा, लहसन आदि व्यंजन देखकर उससे शुभ तथा अशुभ फल जानने को व्यंजन निमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६४—अंगनामक निमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—मस्तक, गला, हाथ, पैर, पेट, अंगुली आदि शरीर के अंगों को देखकर मनुष्य का शुभ अशुभ जानने को अंगनिमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६५-—स्वरनिमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—मनुष्य, तिर्यञ्च या अचेतनवस्तु के शब्द सुनकर त्रिकाल सम्बन्धी शुभ अशुभ जानने को स्वरनिमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६६—भौमनिमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर-—भूमि का रूखापन, चिकनापन आदि -देखकर भूमि के अन्दर पानी निधि आदि को जान लेने व

शुभ, अशुभ, जीत, हार जान लेने को भौमनिमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६७—अन्तरिक्षनिमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—सूर्य चन्द्र आदि के ग्रहण व ग्रहों के उदय, अस्त व उल्कापात आदि देखकर त्रिकाल सम्बन्धी शुभ अशुभ के जानने को अन्तरिक्षनिमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६८—लक्षणनिमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—हथेली आदि शरीर के अवयवों में कमल, चक्र, मीन, कलश आदि चिन्हों को देखकर शुभ अशुभ जानने को लक्षणनिमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ६९—स्वप्ननिमित्त किसे कहते हैं?

उत्तर—शुभ अशुभ स्वप्नों के अनुसार शुभ अशुभ फल जानने को स्वप्ननिमित्त कहते हैं ।

प्रश्न ७०—निमित्तदोष में क्या दोष आता है?

उत्तर—निमित्त नामक उपादान दोष में रसास्वादन, दीनता आदि दोष हैं ।

प्रश्न ७१—वनीपकवचनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—भोजनादि ग्रहण करने के अभिप्राय से बनीपक (याचक) की तरह दाता के अनुकूल वचन बोलकर आहार ग्रहण करने को वनीपकवचनदोष कहते हैं । जैसे कोई दाता पूछे कि कुत्ता, कौवा, मांसभोगी ब्राह्मण इत्यादि को दान देने में पुण्य है या नहीं, तब उत्तर देना हाँ है आदि ।

प्रश्न ७२—वनीपकवचनदोष में क्या दोष आता है?

उत्तर—वनीपकवचन में दीनता का दोष आता है ।

प्रश्न ७३—आजीव दोष किसे कहते हैं?

उत्तर—अपनी जाति, कुल की शुद्धता प्रकट करके अपनी कला, चतुरता प्रकट करके यन्त्र-मन्त्र करके लोकों के द्वारा आहार उपार्जित करने को आजीव दोष कहते हैं ।

प्रश्न ७४—आजीवकर्म में क्या दोष आता है?

उत्तर—इसमें दीनता, लिप्सा, कल्याणमार्ग में प्रमाद आदि दोष आते हैं ।

प्रश्न ७५—क्रोधदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—क्रुद्ध होकर भोजनादि प्रबन्ध कराने व ग्रहण करने को क्रोधदोष कहते हैं ।

प्रश्न—७६—इसमें क्या दोष आता है?

उत्तर—संयम की हानि, उन्मार्ग का प्रसार आदि दोष आते हैं ।

प्रश्न ७७—मानदोष किसे कहते है?

उत्तर—अभिमान के वश होकर आहार ग्रहण करने को मानदोष कहते हैं ।

प्रश्न ७८-—इसमें क्या दोष आता है?

उत्तर—रसगौरव, संयमहानि, उन्मार्ग आदि दोष आते हैं ।

प्रश्न ७९-—मायादोष किसे कहते हैं?

उत्तर—मायाचार, छल, कपट सहित भोजनादि ग्रहण करने को मायादोष कहते हैं ।

प्रश्न ८०—इसमें क्या दोष आता है?

उत्तर—सम्यक्त्वहानि, संयमहानि के दोष मायादोष में उत्पन्न हो जाते हैं ।

प्रश्न ८१-—लोभदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—क्षुब्ध परिणामों से आहारादि ग्रहण करने को लोभदोष कहते हैं ।

प्रश्न ८२-—इस दोष से क्या अनर्थ होता है?

उत्तर-—लोभदोष से मूल गुण में हानि, स्वभावदृष्टि की अयोग्यता हो जानें के अनर्थ हो जाते हैं ।

प्रश्न ८३-—पूर्वस्तुतिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—दातार की पहिले प्रशंसा करके अपनी ओर आकर्षित कर दातार से भोजनादि ग्रहण करने को पूर्वस्तुतिदोष कहते हैं ।

प्रश्न ८४-—इस दोष से क्या अनर्थ होता है?

उत्तर-—इसमें परमुखापेक्षा, कृपणता, आत्मगौरवनाश आदि अनर्थ होते हैं ।

प्रश्न ८५-—पश्चात्स्तुतिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर-—आहार ग्रहण करने के बाद दाता की प्रशंसा स्तुति करना, सो पश्चात्स्तुति नामक दोष है ।

प्रश्न ८६-—इस दोष से क्या अनर्थ है?

उत्तर—आगे भी भोजन प्रबन्ध हमारा अच्छा रहे, इस अभिप्राय से यह दोष होता है । इससे निदान, कृपणता, आत्मगौरवनाश आदि अनर्थ होते हैं ।

प्रश्न ८७—चिकित्सादोष किसे कहते हैं?

उत्तर—आठ प्रकार की चिकित्सा में से एक या अनेक चिकित्सा के द्वारा उपकार करके या उनका उपदेश करके आहारादि लेने को चिकित्सादोष कहते हैं । चिकित्सायें ८ ये है—(१) बालचिकित्सा, (२) अङ्गचिकित्सा, (३) रसायनचिकित्सा, (४) विषचिकित्सा, (५) भूतापनदन, (६) क्षारतन्त्र (७) शलाकाचिकित्सा, (८) शल्यचिकित्सा ।

प्रश्न ८८—चिकित्साकर्म में क्या दोष होता है?

उत्तर—चिकित्सावों करि भोजन करने में सावद्यादि अनेक दोष होते हैं ।

प्रश्न ८९-—विद्यादोष किसे कहते हैं?

उत्तर—होम जप आदि द्वारा साधित विद्यावों को बुलाकर उनसे प्राप्त हुई आहार औषधि ग्रहण करने को अथवा दातार को विद्या देने की आशा देकर आहारादि ग्रहण करने को विद्योत्पादन दोष कहते हैं ।

प्रश्न ९०—इसमें क्या दोष आता है?

उत्तर-—विद्यादोष में स्वरूप की असावधानी, आत्मविश्वास का अभाव आदि दोष आते हैं ।

प्रश्न ९१—मन्त्रदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—गुरुमुख से अध्ययन किये हुये और सिद्ध हुये मन्त्र से देवता का आमन्त्रण करके उनसे सम्पन्न हुए आहार ग्रहण करने को अथवा सुखदायक मन्त्र की आशा देकर दातार से आहार ग्रहण करने को मन्त्रदोष कहते हैं ।

प्रश्न ९२-—इसमें क्या दोष है?

उत्तर-—विद्यादोष की तरह इसमें भी अनेक दोष हैं ।

प्रश्न ९३-—-चूर्णदोष किसे कहते हैं?

उत्तर-—दातार के लिये भूषाचूर्ण व अञ्जनचूर्ण को सम्पादित करके उसके यहाँ आहार ग्रहण करने को चूर्णदोष कहते हैं ।

प्रश्न ९४—इसमें क्या दोष होता है?

उत्तर—आजीविकावत् आरम्भ का दोष इसमें होता है ।

प्रश्न ९५-—वशदोष किसे कहते हैं?

उत्तर-—जो जिसके वश में न हो उसे वश में करने का उपाय बताकर या वैसी योजना कर या परस्पर वियुक्त हुये स्त्री पुरुषों का मेल कराकर या उपाय बताकर भोजन ग्रहण करने को वशदोष कहते हैं ।

प्रश्न ९६—इस दोष में क्या अनर्थ है?

उत्तर—निर्दयता, पीडोत्पादन, रागवृद्धि, लज्जाकर्म, ब्रह्मचर्य के अतिचार आदि अनेक अनर्थ इस दोष से उत्पन्न होते हैं ।

प्रश्न ९७—उत्पादन दोष का निरुक्त्यर्थ क्या है?

उत्तर—जिनमार्ग विरुद्ध क्रियावों द्वारा भोजन उत्पन्न कराया जाये उन क्रियाओं को उत्पादन दोष कहते हैं ।

प्रश्न ९८—उत्पादन दोष किसके आश्रित होते हैं?

उत्तर—उत्पादनदोष साधु पात्र के आश्रित होते हैं, क्योंकि ये दोष साधु के शिथिल भाव और क्रियाओं से उत्पन्न होते हैं ।

प्रश्न ९९-—अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—भोज्य पदार्थ से सम्बन्ध रखने वाले दोषों को अशनदोष कहते हैं ।

प्रश्न १००—अशनदोष के भेद कौन-कौन हैं?

उत्तर—शङ्कित, पिहित, म्रक्षित, निक्षिप्त, छोटित, अपरिणत, व्यवहरण, दायक, लिप्त और विमिश्र, ये दस दोष अशनसम्बन्धी हैं ।

प्रश्न १०१—शङ्कितदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—चार प्रकार के अशन में कोई ऐसी शंका उत्पन्न हो जाये कि वह आहार आगम में लेने योग्य

बताया या नहीं अथवा यह आहार शुद्ध भक्ष्य है या नहीं, ऐसे शंकासहित भोजन के करने को शङ्कितदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०२—पिहितदोष किसे कहते हें?

उत्तर—अप्रासुक वस्तु या वजनदार प्रासुक वस्तु से ढके हुए जिस भोजन को उघाड़ कर दिया जावे उस भोजन के ग्रहण करने को पिहितदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०३—म्रक्षितदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—घी, तेल आदि के द्वारा सचिक्कण हुए हाथ या चम्मच कटोरी आदि से दिये गये आहार के ग्रहण करने को म्रक्षितदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०४—निक्षिप्त नामक अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—जो भोजन वस्तु सचित्तत पृथ्वी, जल, अग्नि, बीजरहित और त्रस जीव पर रखी हो उस पदार्थ के ग्रहण करने को निक्षिप्तदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०५—छोटित नामक अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—कुछ भोज्यसामग्री को गिराकर कुछ के ग्रहण करने को, अनिष्ट आहार छोड़कर इष्ट आहार के ग्रहण करने को, जिससे भोज्यसामग्री टपकती रहे, ऐसे हाथ से आहार के ग्रहण करने को छोटितदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०६—अपरिणत नामक अशनदोष किसे कहते है?

उत्तर-जिसका वर्ण, गन्ध, रस न पलटा हो, ऐसे चूर्णमिश्रित जल को चने, चावल आदि के धोवन के जल को ग्रहण करना, सो अपरिणत दोष है ।

प्रश्न १०७—व्यवहरण नामक अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—दातार अपने लट के हुये वस्त्र को यत्नाचाररहित खींचकर व बर्तन, चौकी आदि को घसीटकर और भी यत्नाचार रहित होकर आहार देवे उस आहार के ग्रहण करने को व्यवहरणदोष कहते हैं ।

प्रश्न १०८—दायकदोष नामक अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—जिनका दिया हुआ आहार साधु को ग्रहण करना योग्य नहीं उनके दिये हुए आहार के ग्रहण करने को दायकदोष कहते हैं । अयोग्य दायक ये हैं—मद्यपायी, रोगपीड़ित, पिशाचमूर्च्छित, रजस्वला, बच्चे का प्रसव करने वाली (४० दिन तक) वमन करके आया हुआ, शरीर में तेल लगा रखने वाला, भींत की आड में स्थित, पात्र के स्थान से नीचे या ऊँचे प्रदेश पर स्थित, नपुंसक, जातिच्युत, पतित, मूत्रक्षेपण करके आया हो, नग्न, वेश्या, संन्यासलिंगधारण करने वाली, अति बाला (८ वर्ष से कम), वृद्धा, गर्भिणी (५ मास से ऊपर गर्भ वाली), खाती हुई, अच्छा, बैठी हुई, अग्नि जलाने वाला, अग्नि बुझाने वाला, अग्नि को भस्म से ढांकने वाला, अग्नि घिट्टने वाला, मकान लीपने वाला, एक वस्त्रधारी, दूध पीते बच्चे को छोड़कर आने वाली, बच्चों को नहलाने वाली आदि दातार पात्रदान के अयोग्य हैं ।

उक्त दातारों में कोई विशेषण तो केवल स्त्रियों में घटित होते हैं, कोई विशेषण स्त्री-पुरुष दोनों में घटित होते हैं, इसलिये शब्दलिंग पर ध्यान देकर यथासंभव स्त्री-पुरुषों में विशेषण लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न १०९—लिप्त नामक अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—गेरु, खड़िया, आटा, हरित, अप्रासुक जल आदि से भीगे हुए हाथ या बर्तन द्वारा भोजन के ग्रहण करने को लिप्तदोष कहते हैं ।

प्रश्न ११०—विमिश्रदोष नामक अशनदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस भोजन में सचित्त पृथ्वी, जल, बीज, हरित और जीवित त्रस मिले हुए हों उस भोजन को विमिश्रदोष से दूषित कहा है ।

प्रश्न १११—मुक्तिदोष ४ कौन-कौन से हैं?

उत्तर—(१) अंगार, (२) धूम्र, (३) संयोजना और (४) अतिमात्र, ये चार महादोष हैं ।

प्रश्न ११२—अंगार नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—यह वस्तु अच्छी है, स्वादिष्ट है, कुछ और मिले, इस प्रकार अत्यासक्ति भावपूर्वक भोजन करने को अंगारदोष कहते हैं ।

प्रश्न ११३—धूमदोष नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—यह वस्तु अच्छी नहीं बनी, अनिष्ट है, इस प्रकार ग्लानि करते हुए भोजन करने को धूमदोष कहते हैं ।

प्रश्न ११४—संयोजना नामक भुक्तिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—गर्म और ठंडा, चिकना और रूखा अथवा आयुर्वेद में बताये गये परस्पर विरुद्ध पदार्थों को मिलाकर खाना सो संयोजना नामक दोष है ।

प्रश्न ११५—अतिमात्र नामक मुक्तिदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—भोजन का जो परिमाण बताया गया है उसका उल्लंघन करके उस परिमाण से अधिक आहार करने को अतिमात्र नामक मुक्तिदोष कहते हैं ।

प्रश्न ११६—आहार का परिमाण क्या है?

उत्तर—उदर के दो भाग याने भूख के २ भाग अर्थात् आधे भाग को भोजन से पूर्ण करना चाहिये और एक भाग को जल से पूर्ण करना चाहिये और एक भाग को खाली रखना चाहिये ।

प्रश्न ११७—मलदोष किसे कहते हैं?

उत्तर—जिनसे छू जाने पर, मिल जाने पर आहार ग्रहण करने के योग्य न रहे उसे मल कहते हैं और मल के दोष को मलदोष कहते हैं ।

प्रश्न ११८—मल कौन-कौन से हैं?

उत्तर-—(१) पूय याने पीव, (२) रुधिर, (३) मांस, (४) हड्डी, (५) चर्म, (६) नख, (७) केश, (८)

मृतविकलत्रय याने मरा हुआ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव, (९) सूरण आदि कन्द, (१०) जिसमें अंकुर होने वाला हो ऐसा बीज, (११) मूली, अदरख आदि मूल, (१२) बेर आदि तुच्छ फल, (१३) कण और (१४) भीतर कच्चा व बाहर पक्का ऐसा चावल आदि कुण्ड ।

प्रश्न ११९-—उक्त १४ मलों में से किस मलस्पर्श से कितना दोष होता है?

उत्तर—पीव, रुधिर, मांस, हड्डी और चर्म, इनसे संसक्त आहार जब प्रतीत हो तब आहार तो छोड़ ही देवे और विधिवत् प्रायश्चित भी ग्रहण करे ।

नख से संसक्त आहार हो तो आहार को छोड़ देवे तथा किंचित् प्रायश्चित भी करे ।

यदि केश या मृत विकलत्रय से संसक्त आहार हो तो उस आहार को छोड़ देवे ।

यदि बन्द, बीज, मूल, फल, कण और इनसे संस्पृष्ट आहार हो तो इन्हें निकालकर दूर कर देवे । कदाचित् इनका अलग करना अशक्य हो तो उस आहार को छोड़ देना चाहिये ।

प्रश्न १२०—भोजन सम्बन्धी अन्तराय किसे कहते है?

उत्तर—जिनके निमित्त से साधुजन आहार का त्याग कर देते हैं उन्हें अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १२१-—अन्तराय कौन-कौन हैं?

उत्तर—(१) काक, (२) अमेध्य, (३) छर्दि, (४) रोधन, (५) रुधिर, (६) अश्रुपात, (७) जान्वधःपरामर्श, (८) जानूपरिव्यतिक्रम, (९) नाभ्यधोनिर्गमन, (१०) प्रत्याख्यात सेवन, (११) जन्तुबध, (१२) काकादिपिण्डहरण, (१३) पाणि पिण्डपतन, (१४) पाणिजन्तुवध, (१५) मांसादिदर्शन, (१६) उपसर्ग, (१७) पादान्तरापञ्चेन्द्रियागमन, (१८) भाजनसंपात, (१९) उच्चार, (२०) प्रस्रवण, (२१) अभोज्यगृहप्रवेश, (२२) पतन, (२३) उपवेशन, (२४) संदंश, (२५) भूमिस्पर्श, (२६) निष्ठीबन, (२७) उदरक्रिमिनिर्गम, (२८) अदत्तग्रहण, (२९) प्रहार, (३०) ग्रामदाह, (३१) पादग्रहण, (३२) करग्रहण ।

प्रश्न १२२—काक नामक अन्तराय किसे कहते है?

उत्तर—आहारार्थ चर्या में या आहार के समय साधु के शरीर पर कोई कौवा, कुत्ता आदि जानवर मलोत्सर्ग कर दे तो काक नामक अन्तराय हो जाता है ।

प्रश्न १२३—अमेध्य अंतराय किसे कहते हैं?

उत्तर—आहारार्थ जाते हुए अथवा खड़े हुए साधु के यदि किसी प्रकार पैर, घुटने, जांघों आदि किसी भी अङ्ग में विष्टा आदि अशुचि पदार्थ का स्पर्श हो जावे तो अमेध्य नामक अन्तराय होता है ।

प्रश्न १२४—छर्दि नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—यदि किसी कारण साधु को स्वयं वमन हो जाये तो उसे छर्दि नामक अंतराय कहते हैं ।

प्रश्न १२५—रोधन नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—आज भोजन मत करना, इस प्रकार किसी के रोक देने को रोधन अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १२६—रुधिर नामक अन्तराय कब होता है?

उत्तर—अपने या पर के शरीर से चार अंगुल या और अधिक तक रुधिर, पीव आदि साधु देख ले तब रुधिर नामक अन्तराय होता है ।

प्रश्न १२७—अश्रुपात अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—शोक से अपने अश्रु बह जाने को या किसी के मरने आदि के कारण से किसी का आक्रन्दन (जोर का रोना) सुनाई पड़ने को अश्रुपात अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १२८—जान्वध:परामर्श अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—सिद्ध भक्ति के अनन्तर अपनी जानु (घुटने) के नीचे भाग का हाथ से स्पर्श हो जाने को जान्वध:पात अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १२९—जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय कब होता है?

उत्तर—घुटने तक ऊंचे या इससे अधिक ऊंचे पर लगे हुए अर्गल, पाषाण आदि को लांघकर जाने में जानूपरिव्यतिक्रम अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३०—नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—यदि अपने शरीर को नाभि से नीचे करके किसी द्वार आदि से निकलना पड़े तो उसे नाभ्यधोनिर्गम अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३१—प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—त्याग किया हुआ पदार्थ यदि खाने में आ जाये तो उसे प्रत्याख्यातसेवन नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३२—जन्तुवधनामक अन्तराय क्या है ?

उत्तर—यदि अपने ही (साधु के) सन्मुख कोई चूहे, बिल्ली, कुत्ते आदि जीवों का घात करे तो उसे जन्तुवध नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३३—काकादिपिण्डहरण अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—काक, चील आदि जानवर के द्वारा हाथ पर से ग्रास के ले जाने को या छूने को काकादिपिण्डहरण अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३४—पाणिपिण्डपतन अन्तराय किसे कहते है?

उत्तर—भोजन करते हुए साधु के हाथ से ग्रास के गिर जाने को पाणिपिण्डपतन अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३५—पाणिजन्तुबंध अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—भोजन करते हुए साधु के हाथ पर कोई जीव स्वयं आकर मर जावे तो उसे पाणिजन्तुवध अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १३६—मांसदर्शनादि अन्तराय कब होता है?

उत्तर—भोजन करते हुये साधु को मांस, मद्य आदि दिख जावे तो मांसदर्शनादि नामक अन्तराय होता है

।

प्रश्न १३७—उपसर्ग नामक अन्तराय क्या होता है?

उत्तर—भोजन करते समय यदि देव, मनुष्य या तिर्यञ्च किसी के द्वारा उत्पात हो तो वह उपसर्ग नामक अन्तराय होता है ।

प्रश्न १३८—पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अन्तराय क्या है?

उत्तर—भोजनार्थ चलते समय या आहार के समय यदि चरणों के अन्तराल में कोई पञ्चेन्द्रिय जीव आ जावे तो वह पादान्तरपञ्चेन्द्रियागम अन्तराय है ।

प्रश्न १३९—भाजनसंपात अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—साधु को आहार देने वाले के हाथ से कोई कटोरा आदि पात्र गिर पड़े तो उसे भाजनसंपात अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४०—उच्चार अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—भोजनार्थ जाते हुए या आहार करते हुये साधु के विष्टा मल निकल आवे तो उसे उच्चार नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४१—प्रस्रवण अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—साधु के मूत्र का स्राव हो जाने को प्रस्रवण अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४२—अभोज्यगृह-प्रवेश अन्तराय क्या है?

उत्तर-—भिक्षार्थ चर्या करते हुए यदि साधु का चाण्डाल आदि अस्पृश्य जीवों के घर प्रवेश हो बाय तो उसे अभोज्यगृह-प्रवेश अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४३—पतन नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—साधु के मूर्च्छा, भ्रम, श्रम, रोग आदि के कारण भूमि पर गिर जाने को पतन नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४४—उपवेशन नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—अशक्ति आदि कारणवश साधु के भूमि पर बैठ जाने को उपवेशन नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४५—संदंश नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—भिक्षार्थ पर्यटन में या आहार के समय कुत्ता, बिल्ली आदि कोई जानवर साधु को काट ले तो उसे संदंश नामक अंतराय कहते हैं ।

प्रश्न १४६—भूमिस्पर्श अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—सिद्धभक्ति किये बाद साधु को हाथकरि भूमिस्पर्श हो जाये तो उसे भूमिस्पर्श नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४७—निष्ठीवन नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—आहार करते हुए साधु के कफ, थूक, नाक आदि के निकल जाने को निष्ठीवन नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १४८—उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय क्या है?

उत्तर—मुखद्वार से अथवा गुदा द्वार से साधु के पेट की क्रिमि (कीड़े) का निकलना, सो उदरक्रिमिनिर्गमन अन्तराय है ।

प्रश्न १४९—अदत्तग्रहण नामक अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—दातार के दिये बिना ही भोजन औषधि ग्रहण कर ली जाये या संकेत करके भोजनादि ग्रहण किया जाये तो उसे अदत्तग्रहण नामक अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १५०—प्रहार नामक अन्तराय कब होंता है?

उत्तर—अपना (साधु का) या निकटवर्ती किसी अन्य का खड्ग बरछी आदि द्वारा प्रहार करने पर प्रहार अन्तराय होता है ।

प्रश्न १५१—ग्रामदाह अन्तराय कब होता है?

उत्तर—जिसके निकट स्वयं का निवास हो रहा हो, ऐसे ग्राम में अग्नि के लग जाने पर ग्रामदाह नामक अन्तराय हो जाता है ।

प्रश्न १५२—पादग्रहण अन्तराय किसे कहते हें?

उत्तर—किसी भी वस्तु को पैर से उठाकर ग्रहण करने को पादग्रहण अंतराय कहते हैं ।

प्रश्न १५३—हस्तग्रहण अन्तराय किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी वस्तु को भूमि पर से हाथ द्वारा उठाकर ग्रहण करने को हस्तग्रहण अन्तराय कहते हैं ।

प्रश्न १५४—ये किस समय से किस समय तक बीच में माने जाते हें?

उत्तर—साधु जब भिक्षार्थ जाता है उससे पहिले भुक्तिचर्या के लिये सिद्धभक्ति करता है । किसी श्रावक के द्वारा पड़गाह जाने पर भोजनशाला में स्थित होकर दुबारा सिद्धभक्ति पड़ता है । उक्त अन्तरायों में से कुछ अन्तराय पहिली सिद्धभक्ति से लेकर आहार-समाप्ति तक के बीच में माने जाते हैं और कुछ अंतराय द्वितीय सिद्धभक्ति से आहार-समाप्ति तक माने जाते हैं । उन्हें यथागम लगा लेना चाहिये ।

प्रश्न १५५—एषणा समिति का शब्दार्थ क्या है?

उत्तर—एषणा का अर्थ खोजना है । उक्त सब प्रकारों से निर्दोष आहार खोजने के लिये तथा आहार करने के लिये जो सावधानी होती है उसे एषणा समिति कहते हैं ।

प्रश्न १५६—आदाननिक्षेपणसमिति किसे कहते हैं?

उत्तर—कमण्डल, पुस्तक आदि योग्य वस्तु को देख-भालकर जिसमें जीव बाधा न हो, धरने-उठाने को आदाननिक्षेपणसमिति कहते हैं ।

प्रश्न १५७—प्रतिष्ठापन समिति किसे कहते हैं?

उत्तर—निर्जन्तु एवं योग्य भूमि पर जहाँ पुरुषादि के बैठने उठने का प्राय: नियत स्थान न हो, समिति याने सावधानी सहित मल-मूत्र, कफ, थूक, नाक आदि क्षेपण करना प्रतिष्ठापन समिति कहलाती है ।

प्रश्न १५८—गुप्ति नामक भावसंवरविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर—संसार के कारणभूत रागादि से बचने के लिये अपनी आत्मा को निज सहज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना, उपयोग में सुरक्षित रखने, लीन करने को गुप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १५९—गुप्तिरूप भावसंवर की साधना के उपाय क्या हैं?

उत्तर—मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति—ये तीन गुप्तिरूप भावसंवर के उपाय अथवा विशेष हैं ।

प्रश्न १६०—मनोगुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—रागादि भावों के त्याग को अथवा समीचीन ध्यान करने को अथवा मन को वश में करने को मनोगुप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १६१—वचनगुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—कठोर वचनादि के त्याग को अथवा मौन धारण कर लेने को वचनगुप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १६२—कायगुप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—समस्त पापों से दूर रहने को व शरीर की चेष्टाओं की निवृत्ति को कायगुप्ति कहते हैं ।

प्रश्न १६३—धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—क्रोधादि कषायों का उद्भव कर देने वाले कारणों का प्रसंग उपस्थित होनेपर भी इच्छा और कलुषताओं के उत्पन्न न होने को और स्वभाव की स्वच्छता बनी रहने को धर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६४—धर्म शब्द का निरुक्त्यर्थ क्या है?

उत्तर—धरतीति धर्म:=जो जघन्यपद से हटाकर उत्तम पद में धारण करावे उसे धर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६५—जघन्य और उत्कृष्ट पद क्या हैं?

उत्तर-—मिथ्यात्व, राग, द्वेष से आत्मा का कलुषित रहना तो जघन्यपद है और परमपारिणामिक रूप निजचैतन्यस्वभाव के अवलम्बन के बल से स्वभाव का स्वच्छ विकास होना उत्कृष्ट पद है ।

प्रश्न १६६—धर्म के अङ्ग कितने हैं?

उत्तर-—धर्म के १० अङ्ग है—(१) क्षमा, (२) मार्दव, (३) आर्जव, (४) शौच, (५) सत्य, (६) संयम, (७) तप, (८) त्याग, (९) आकिंचन्य और (१०) ब्रह्मचर्य ।

प्रश्न १६७-—क्षमा नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी व स्वयं समर्थ होकर भी दूसरे को क्षमा कर देने तथा निज ध्रुवस्वभाव के उपयोग के बल से संसार-भ्रमण के कारणभूत मोहादि भावों को शान्त कर अपने को क्षमा कर देने को क्षमा कहते हैं ।

प्रश्न १६८—मार्दव नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—जाति, कुल, विद्या, वैभव आदि विशिष्ट होने पर भी दूसरों को तुच्छ न मानने व स्वयं अहङ्कारभाव न करने तथा निज सहज स्वभाव के उपयोग के बल से, अपूर्ण विकास में अहङ्कारता समाप्त करके अपनी मृदुता प्रकट कर लेने को मार्दवधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १६९—आर्जव नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी के प्रति छल कपट का व्यवहार व भाव न करने तथा निज सरल चैतन्यस्वभाव के उपयोग से स्वभावविरुद्ध भावों को नष्ट करके अपनी यथार्थ सरलता प्रकट कर लेने को आर्जवधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७०—शौच नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी भी वस्तु की तृष्णा या लालच न करने तथा निज स्वतःसिद्ध चैतन्यस्वभाव के उपयोग के बल से परोपयोग नष्ट करके निःसङ्ग, स्वच्छ अनुभव करने को शौचधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७१—सत्य नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस वचन और क्रिया के निमित्त से निज सत् स्वरूप याने आत्मस्वरूप की ओर उन्मुखता हो उसे सत्यधर्म कहते हैं, तथा निज अखण्ड सत् के उपयोग से निजस्वरूप के त्रैकालिक तत्त्व का अनुभवन हो, उसे सत्यधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७२—संयमनामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—इन्द्रियसंयम व प्राणसंयम द्वारा स्वपरहिंसा से निवृत्त होने तथा निज नियत चैतन्यस्वभाव के उपयोग से पर्यायदृष्टियों को समाप्त कर निजस्वरूप में लीन होने को संयमधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७३—तप नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—रागादि के अभाव के लिये विविध कायक्लेश और मन के या इच्छा के निरोध करने को तथा नित्य अन्तःप्रकाशमान निज ब्रह्मस्वभाव के उपयोग से, विभाव से निवृत्त होकर स्वभाव में तपने को तपधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७४—त्याग नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—ज्ञानादि दान करने व आभ्यन्तर एवं बाह्य परिग्रह का त्याग करने को तथा परनिरपेक्ष निज चैतन्यस्वभाव के उपयोग के बल से समस्त विकल्पों का त्याग करके सहजज्ञान और आनन्द के अनुभवन करने को त्यागधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७५—आकिञ्चन्यधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—रागादिभाव, शरीर, कर्म, संपत्ति आदि समस्त परभावों के प्रति ये समस्त मेरे कुछ नहीं हैं, ऐसा अनुभव करने तथा केवल चिन्मात्र निजस्वभाव के उपयोग के बल से निर्विकल्प अनुभवन करने को आकिञ्चन्यधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७६—ब्रह्मचर्य नामक धर्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर—मैथुनसम्बन्धी सूक्ष्म विकल्प से भी निवृत्ति होकर गुरु के आदेशानुसार चर्या करने व आत्मस्वरूप में प्रवृत्ति करने को तथा परमब्रह्मरूप निज चैतन्यस्वभाव के उपयोग से सर्व परभावों से निवृत्त होकर निजब्रह्म में स्थित होने को ब्रह्मचर्यधर्म कहते हैं ।

प्रश्न १७७—अनुप्रेक्षा नामक भावसंवरविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस प्रकार यह आत्मा अपने स्वरूप की उपलब्धि करे उसके अनुसार प्रेक्षण अर्थात् बार-बार विचार एवं अनुभव करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न १७८—अनुप्रेक्षा कितने प्रकार की हैं?

उत्तर-—अनुप्रेक्षा १२ प्रकार की है—(१) अनित्यानुप्रेक्षा, (२) अशरणानुप्रेक्षा, (३) संसारानुप्रेक्षा, (४) एकत्वानुप्रेक्षा, (५) अन्यत्वानुप्रेक्षा, (६) अशुचित्वाच्यनुप्रेक्षा, (७) आस्रवानुप्रेक्षा, (८) संवरानुप्रेक्षा, (९) निर्जरानुप्रेक्षा, (१०) लोकानुप्रेक्षा, (११) बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा और (१२) धर्मानुपेक्षा ।

प्रश्न १७९—अनित्यानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—धन, परिवार, शरीर, कर्म, और रागद्वेषादिक भाव ये सब अनित्य हैं, ऐसी भावना करने को अनित्यानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न १८०—इस अनित्यभावना से क्या लाभ होता है?

उत्तर—उक्त अनित्यभावना भाने वाले पुरुष को इन पदार्थों का संयोग व वियोग होने पर भी ममत्व नहीं होता है और ममत्व न होने से त्रैकालिक नित्य ज्ञायकस्वरूप निजपरमात्मा की भावना होती है, जिससे यह अन्तरात्मा परमआनन्दमय अवस्था को प्राप्त होता है ।

प्रश्न १८१—धन, परिवार आदि के साथ आत्मा का क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं है?

उत्तर—परमार्थ से धन परिवार, शरीर, कर्म और रागादिविभाव के साथ आत्मा का कुछ सम्बन्ध नहीं है ।

प्रश्न १८२—फिर इनमें सम्बन्ध की कल्पना किस अभिप्राय से हुई?

उत्तर—धन, परिवार का सम्बन्ध तो उपचरित असद्भूतव्यवहार से है; शरीर, कर्म का सम्बन्ध अनुपचरितअसद्भूतव्यवहार से है और रागादि विभाव का सम्बन्ध मात्र अशुद्धनिश्चय नय से जीव के साथ है । असद्भूत का तो आत्मा में अत्यन्ताभाव है और अशुद्धपर्याय औपाधिक व क्षणिक परिणमन है ।

प्रश्न १८३—अशरणानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—देव, सुभट, मित्र, पुत्रादि य मणि, मन्त्र, तन्त्र, आशीर्वाद, औषधादिक कुछ भी इस जीव की मरणसमय में तथा वेदना आदि समस्त परिणमनों के समय में शरण नहीं है, ऐसी भावना करने को अशरणानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न १८४—इस अशरणभावना से क्या लाभ होता है?

उत्तर—बाह्य पदार्थों की शरण मानने का अभिप्राय मिट जाने से जीव शाश्वत शरण भूत निज शुद्ध आत्मा का शरण प्राप्त कर लेता है, जिससे यह अन्तरआत्मा भय और निदान बाधारहित सहज आनन्द का अनुभव

करता है ।

प्रश्न १८५—संसारानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—यह जीव अनादिकाल से द्रव्यपरिवर्तन, क्षेत्रपरिवर्तन, कालपरिवर्तन, भवपरिवर्तन व भावपरिवर्तन—इन पांच प्रकार के संसारों याने परिभ्रमणों में नाना प्रकार के भयंकर दुखमात्र अज्ञान से भोगता चला आया है । इस प्रकार के चिन्तवन को संसारानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न १८६—द्रव्यपरिवर्तन या द्रव्यसंसार क्या है?

उत्तर—परिवर्तन नाम परिभ्रमण का है । इन परिवर्तनों में मुख्य बात यह ही जानने की है कि जीव का परिभ्रमण में इतना काल व्यतीत हो गया है । इन परिवर्तनों के वर्णन से भ्रमण के समय का परिचय कराया गया है । द्रव्यपरिवर्तन दो प्रकार से वर्णित है-—नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन, (२) कर्मद्रव्यपरिवर्तन । जिसमें से नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन का स्वरूप पहिले समझ लेना चाहिये ।

प्रश्न १८७—नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन का क्या तात्पर्य है?

उत्तर—नोकर्म का अर्थ है शरीर । जैसे किसी जीव ने यथासम्भव तीव्र मन्द मध्यम भाव वाले स्पर्श रस गंध वर्णयुक्त नोकर्मवर्गणाओं को शरीररूप से ग्रहण किया । पश्चात् द्वितीयादि समय में वे खिर गये, किन्तु अनेक अगृहीत नोकर्मवर्गणाओं को ग्रहण किया । इसी तरह अनन्त बार अगृहीत नोकर्मवर्गणावों को ग्रहण कर चुकने पर एक बार मिश्रवर्गणावों को ग्रहण किया । अनन्त बार अगृहीत वर्गणाओं को ग्रहण करने पर एक बार मिश्र (जिनमें कुछ गृहीत व कुछ अगृहीतवर्गणायें हों) वर्गणावों को ग्रहण किया । इसी रीति से जब अनन्त बार मिश्रवर्गणाओं का ग्रहण हो चुके तब एक बार गृहीतवर्गणाओं को ग्रहण किया । अगृहीतमिश्रग्रहण की रीति पूर्वक गृहीतवर्गणाओं को फिर ग्रहण किया, इसी रीति से होते-होते जब अनंत बार गृहीतवर्गणाओं का ग्रहण हो चुका तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के ४ भागों में से एक भाग हो चुकता है । इस भाग का नाम है अगृहीतमिश्रगृहीतक्रमग्रहण ।

फिर उस जीव ने मिश्रवर्गणाओं को ग्रहण किया । अनन्त बार मिश्रग्रहण होने पर एक बार अगृहीतवर्गणाओं को ग्रहण किया । पश्चात् अनन्त मिश्रग्रहण होने पर अगृहीतवर्गणावों को ग्रहण किया । इस रीति से अनन्त बार अगृहीतवर्गणाओं को ग्रहण कर चुकने पर एक बार गृहीतवर्गणाओं को ग्रहण किया । मिश्रअगृहीतग्रहण क्रमपूर्वक गृहीतवर्गणावों का जब अनन्त बार ग्रहण हो चुकता है तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के दो भाग समाप्त हो चुकते हैं । इस द्वितीय भाग का नाम मिश्रअगृहीतगृहीतकर्म ग्रहण है ।

फिर उस जीव ने मिश्रवर्गणाओं को ग्रहण किया, अनन्त बार मिश्रवर्गणाओं के ग्रहण करने पर एक बार गृहीतवर्गणाओं को ग्रहण किया । फिर अनन्त बार मिश्रग्रहण के बाद एक बार गृहीतवर्गणाओं को ग्रहण किया । इस रीति से मिश्रगृहीत ग्रहणपूर्वक अनंत बार गृहीतवर्गणावों का ग्रहण हो चुकने पर एक बार अगृहीतवर्गणाओं का ग्रहण किया । इसी रीति के होते-होते जब अनन्त बार अगृहीतवर्गणाओं को ग्रहण कर चुकता है तब नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के ३ भाग समाप्त हो जाते हैं । इस तृतीय भाग का नाम मिश्रगृहीत

अगृहीतकर्मग्रहण है ।

फिर उस जीव ने गृहीतनोकर्मवर्गणावों को ग्रहण किया, अनन्त बार गृहीतवर्गणाओं को ग्रहण कर चुकने पर एक बार मिश्रवर्गणाओं को ग्रहण किया । अनन्त बार गृहीतवर्गणाओं को ग्रहण कर चुकने पर फिर एक बार मिश्रवर्गणाओं को ग्रहण किया । इस रीति से अनन्त बार मिश्रवर्गणाओं के ग्रहण हो चुकने पर एक बार अगृहीतवर्गणाओं को ग्रहण किया । इसी प्रकार गृहीत-मिश्र-अगृहीतग्रहणपूर्वक जब अनन्त बार अगृहीतनोकर्मवर्गणाओं का ग्रहण हो चुकता है तब नोकर्मद्रव्य परिवर्तन का चौथा भाग समाप्त हो जाता है । इस भाग का नाम गृहीतमिश्रअगृहीतकर्मग्रहण है ।

इसके पश्चात् इस नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के प्रारंभ के प्रथम समय में जिस भाव वाले स्पर्श रस गंध वर्ण युक्त नोकर्मवर्गणाओं को ग्रहण किया वह शुद्ध गृहीतनोकर्मद्रव्य जब इस जीव के ग्रहण में आ जाये तब एक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन पूरा होता है । इस एक परिवर्तन में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक जितना काल लगता है उतना काल व्यतीत हो जाता है । इस क्रम के विरुद्ध बीच में अनन्तों बार यथा तथा वर्गणावों का ग्रहण होता रहता है वह सब अलग है । ऐसे-ऐसे अनन्त नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन भी इस जीव के हो गये हैं ।

प्रश्न १८८—कर्मद्रव्यपरिवर्तन का समय कितना है?

उत्तर—नोकर्मवर्गणाओं के स्थानपर कर्मवर्गणावों का कहकर कर्मद्रव्य परिवर्तन का विवरण भी नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन की तरह करना चाहिये । इस प्रकार ४ भागों पूर्वक कर्मद्रव्य परिवर्तन के पूरा होने में जितना समय लगता है उतना समय कर्मद्रव्यपरिवर्तन का है । ऐसे-ऐसे अनन्त कर्मद्रव्यपरिवर्तन भी इस जीव के हो गये हैं ।

प्रश्न १८९—क्षेत्रपरिवर्तन का काल किस प्रकार जाना जाता है?

उत्तर—क्षेत्रपरिवर्तन का काल दो प्रकारों से जाना जाता है—(१) स्वक्षेत्रपरिवर्तन और (२) परक्षेत्रपरिवर्तन ।

प्रश्न १९०—स्वक्षेत्रपरिवर्तन का क्या स्वरूप है?

उत्तर—स्व का अर्थ यहाँ जीव है, सो इस परिवर्तन का स्वरूप जीव के निजक्षेत्र याने प्रदेश अथवा शरीर की अवगाहना से जाना जाता है । जीव की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है । उतनी अवगाहना लेकर जीव ने देह धारण किया, फिर इस अवगाहना में जितने प्रदेश हैं उतनी बार इतनी ही अवगाहना वाला शरीर धारण करे । पश्चात् एक-एक प्रदेश अधिक-अधिक की अवगाहनाओं को क्रम से धारण करते-करते महामत्स्य की उत्कृष्ट (१००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा, २५० योजन ऊँचा) अवगाहना पर्यन्त समस्त अवगाहनों को धारण कर ले, इसे स्वक्षेत्रपरिवर्तन कहते हैं । इसमें जितना काल व्यतीत होता है उतना स्वक्षेत्र परिवर्तनकाल है । बीच में अनन्तों बार क्रमविरुद्ध अवगाहनायें प्राप्त होती रहती हैं वे सब अलग हैं । ऐसे-ऐसे क्षेत्रपरिवर्तन अनन्त हो चुके हैं ।

प्रश्न १९१—जिन जीवों ने निगोद शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण नहीं किया उनके स्वक्षेत्रपरिवर्तन

कैसे हो सकता है?

उत्तर—जिन जीवों ने निगोदपर्याय को अब तक छोड़ा भी नहीं उन जीवों के स्वक्षेत्रपरिवर्तन तो नहीं होता, किन्तु अन्य जीवों के अनन्त स्वक्षेत्रपरिवर्तन होने में जितना काल व्यतीत हुआ है उतना याने अनन्तकाल निगोद जीवों का भी संसार-भ्रमण में व्यतीत हुआ है ।

प्रश्न १९२—परक्षेत्रपरिवर्तन का क्या स्वरूप है?

उत्तर—परक्षेत्र का अर्थ है आकाशक्षेत्र । कोई जीव जघन्य (घनांगुल के असंख्यातभाग प्रमाण) अवगाहना धारण कर लोक या लोकाकाश के आठ मध्यप्रदेशों को अपने शरीर के मध्य के आठ प्रदेशों से व्यापकर उत्पन्न हुआ । पश्चात् इस अवगाहना में जितने प्रदेश हैं उतनी बार इतनी ही अवगाहना लेकर इसी स्थान पर इसी रीति से उस जीव ने जन्म धारण किया । पीछे लोक के एक-एक प्रदेश के अधिक कम से समस्त लोक में जन्म धारण कर ले, इस परिवर्तन को परक्षेत्रपरिवर्तन कहते हैं । इसमें जितना काल लगता है उतना परक्षेत्रपरिवर्तन का काल जानना । बीच में कहीं भी अनंतों बार उत्पन्न होता रहता है वह सब अलग है, इसकी गिनती में नहीं आता । ऐसे-ऐसे अनन्त परक्षेत्रपरिवर्तन इस जीव ने किये हैं ।

प्रश्न १९३—अनादि नित्यनिगोदों के क्या यह परक्षेत्रपरिवर्तन हो सकता है?

उत्तर—अनादिनित्यनिगोद जीवों के भी यह परक्षेत्रपरिवर्तन होता है, क्योंकि इसमें लोक के एक-एक प्रदेश पर क्रम से उत्पन्न होने की बात है । शरीर की अवगाहना का इसमें क्रम नहीं है ।

प्रश्न—१९४—कालपरिवर्तन का क्या स्वरूप है?

उत्तर—कोई जीव उत्सर्पिणीकाल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ । पश्चात् अन्य उत्सर्पिणीकाल के दूसरे समय में उत्पन्न हुआ । इसी प्रकार अन्य-अन्य उत्सर्पिणीकाल के तीसरे, चौथे आदि समयों में उत्पन्न हुआ । इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल व अवसर्पिणीकाल के बीस कोड़ाकोड़ीसागर के जितने समय हैं उन सबमें इस क्रम से उत्पन्न हुआ और मरण को प्राप्त हुआ । इस बीच अनन्तों बार अन्य-अन्य समयों में उत्पन्न हुआ वह सब अलग है, उसकी इसमें गिनती नहीं । इसमें जितना काल लगता है उतना काल परिवर्तन का है, ऐसे-ऐसे अतंत कालपरिवर्तन इस जीव ने किये हैं ।

प्रश्न १९५-—भवपरिवर्तन का क्या स्वरूप है?

उत्तर—भव नाम गति का है । चारों गतियों में विशिष्ट क्रम लेकर परिभ्रमण करना भवपरिवर्तन है । जैसे कोई जीव तिर्यग्भव की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त लेकर उत्पन्न हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्त में जितने समय हैं उतनी बार इसी आयु के साथ उत्पन्न हुआ । पश्चात् क्रम से एक-एक समय अधिक आयु लेकर तिर्यग्भव में उत्पन्न होकर तीन पल्य की आयु पूर्ण कर ली । यह तिर्यग्भव परिवर्तन है । इस बीच अनन्तों बार क्रम विरुद्ध आयु लेकर उन्पन्न होता रहता है, वह इस गिनती में नहीं है ।

कोई जीव नरकभव की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुआ । पश्चात् दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार दस हजार वर्ष की जघन्य आयु लेकर उत्पन्न हो । पश्चात् क्रम से एक-

एक समय अधिक की नरकायु लेकर उत्पन्न हो होकर उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर प्रमाण आयु को पूर्ण कर ले । इस बीच अन्य भव तो लेने ही पड़ते, क्योंकि नरकभव के बाद ही वह जीव नारकी नहीं होता, मनुष्य या तिर्यञ्च होता है तथा अनेक बार क्रमविरुद्ध नरक की आयु लेकर उत्पन्न होता है, वह सब इस गिनती में नहीं है । यह नरकभवपरिवर्तन की तरह है, क्योंकि मनुष्य आयु भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्य की होती है ।

देवभवपरिवर्तन नरकभवपरिवर्तन की तरह लगाना, किन्तु उत्कृष्ट आयु में ३१ सागर तक ही कहना, क्योंकि इससे बड़ी स्थिति की देवायु सम्यग्दृष्टि को ही मिलती है ।

इस प्रकार इन चारों भवपरिवर्तनों में जितना समय लगता है उतना काल भवपरिवर्तन का है । ऐसे-ऐसे अनन्त भवपरिवर्तनकाल जीव के व्यतीत हो गये हैं ।

प्रश्न १९६—अनादिनित्यनिगोद के यह परिवर्तन कैसे संभव हो सकता?

उत्तर-—अनादिनित्यनिगोद के यह भवपरिवर्तन तो नहीं होता, किन्तु अन्य जीव के अनन्त भवपरिवर्तनों में जितना काल व्यतीत हुआ उतना काल इसके भी व्यतीत हो गया है ।

प्रश्न १९७—भावपरिवर्तन का क्या स्वरूप है?

उत्तर-कर्मों की यथासम्भव जघन्यस्थिति से लेकर उत्कृष्टस्थिति के बन्ध के कारणभूत भावों का क्रमिक परिवर्तन भावपरिवर्तन है । वह इस प्रकार होता है—कर्मों की एक स्थितिबन्धस्थान होने के लिये या बढ़ने के लिये असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात कषायाध्यवसायस्थान हो जाते हैं । एक कषायाध्वसायस्थान होने के लिये असंख्यातलोकप्रमाण, असंख्यात अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान हो जाते हैं । एक अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान होने के लिये श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यात योगस्थान हो जाते हैं ।

अब प्रकृत क्रमपरिवर्तन देखें—जैसे एक जीव के ज्ञानावरणकर्म की जघन्यस्थिति का बन्ध हुआ । इसके योग्य जघन्ययोगस्थान, जघन्य अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान व जघन्य कषायाध्यवसायस्थान हुए । इसके आगे असंख्यात योगस्थान होने पर एक अनुभागबन्धावसायस्थान बढ़ा व इस रीति से असंख्यात अनुभागबंधाध्यवसायस्थान होने पर एक कषायाध्यवसायस्थान बढ़ा और इसी रीति से असंख्यात कषायाध्यवसायस्थान होने पर ज्ञानावरणकर्म का आगे का एक स्थितिबंधस्थान हुआ । इसी प्रकार योगस्थान अनुभागबंधाध्यवस्थान-कषायाध्यवसायस्थान क्रम से बढ़ाकर स्थितिस्थान बढ़ाया । जब ज्ञानावरण को उत्कृष्ट स्थिति का बन्धस्थान बंध गया तब ज्ञानावरणसम्बन्धी स्थितिस्थानों का विवरण हुआ, इसी प्रकार यथासम्भव सब कर्मों की जघन्यस्थिति से लेकर उत्कृष्टस्थिति पर्यन्त ले जायें । इस सबको एक भावपरिवर्तन कहते हैं । इसमें जितना काल लगता है वह भावपरिवर्तन का काल है । ऐसे-ऐसे अनन्त भावपरिवर्तनकाल जीव के हुए हैं ।

प्रश्न १९८ —अनादिनित्यनिगोद जीव के भावपरिवर्तन कैसे सम्भव है?

उत्तर—कर्मों की यथासंभव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के योग्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय व

संज्ञीपंचेन्द्रिय का भव प्राप्त न होने से सब स्थितिस्थान न हो सकने से इन निगोद जीवों के यद्यपि यह भावपरिवर्तन नही होता है तथापि अन्य जीवों का इसमें जितना काल व्यतीत हुआ है उतना काल निगोद जीवों का भी व्यतीत हुआ है ।

प्रश्न १९९—इन पांच प्रकार के संसारों का काल क्या एकसा है या हीनाधिक?

उत्तर—द्रव्यपरिवर्तन से अनन्तगुणा काल क्षेत्रपरिवर्तन का है । क्षेत्रपरिवर्तन से अनन्त गुणा काल कालपरिवर्तन का है, कालपरिवर्तन से अनन्तगुणा काल भवपरिवर्तन का है और भवपरिवर्तन से अनन्तगुणा काल भावपरिवर्तन का है ।

प्रश्न २००—इस संसारानुप्रेक्षा से क्या लाभ है?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना के बिना अज्ञान से यह जीव इस प्रकार नाम देहों को धारण कर नाना क्षेत्रों में भव धारण कर, चारों गतियों में भटककर, नामकर्मों को बांधता हुआ भयंकर दुःख भोगता चला आया है । अब यदि दुःख भोगना इष्ट नहीं है तो संसार-विपत्ति का विनाश करने वाली निज शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिये । इस हित कर्तव्य की प्रेरणा संसारानुप्रेक्षा से मिलती है ।

प्रश्न २०१—एकत्वानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—सुख, दुःख, जीवन, मरण सब अवस्थाओं में मैं अकेला ही हूँ, संसारमार्ग का मैं अकेला कर्ता हूँ और मोक्षमार्ग का मैं अकेला कर्ता हूं—इस प्रकार चिन्तवन करने एवं द्रव्य कर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित ज्ञायकत्वस्वरूप एक निज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना करने को एकत्वानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २०२—इस भावना से क्या लाभ है?

उत्तर—एकत्वभावना से दु:खों की शान्ति होकर सहज आनन्द प्रकट होता है । क्योंकि दुःख विकल्पों से उत्पन्न होता है और किसी न किसी परपदार्थ के सम्बन्ध से, उपयोग से होता है, अत: सहज ज्ञान, आनन्द स्वरूप निज आत्मा के एकत्व में उपयोग होने पर निर्विकार अनाकुलतारूप अनुपम आनन्द प्रकट होता ही है ।

प्रश्न २०३—अन्यत्वानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—देह, परिवार, वैभव, इन्द्रियसुख आदि समस्त परभाव मुझसे भिन्न हैं, अत: हेय हैं, इस प्रकार की भावना को अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २०४—इन्द्रियसुख मुझसे कैसे भिन्न हैं?

उत्तर—मैं निर्विकार ध्रुव चैतन्यचमत्कार मात्र कारणसमयसार हूँ और ये इन्द्रियसुख कर्माधीन एवं स्वभावविरुद्ध होने से विकार हैं व विनश्वर हैं । अत: मैं इन्द्रियसुख से भी भिन्न हूँ ।

प्रश्न २०५—अन्यत्वानुप्रेक्षा से क्या लाभ है?

उत्तर—परभावों की भिन्नता जानने से आत्मा की परवस्तुवों में हितबुद्धि नहीं होती और परमहितकारी निज शुद्ध आत्मतत्त्व में भावना जागृत होती है ।

प्रश्न २०६—एकत्वानुप्रेक्षा और अन्यत्वानुप्रेक्षा दोनों का विषय एकत्व की भावना है तब दोनों में अन्तर क्या रहा?

उत्तर—एकत्व भावना में तो विधिरूप से निज आत्मतत्त्व का उपयोग किया जाता है और अन्यत्वभावना में अन्य के निषेधरूप निज आत्मतत्त्व का उपयोग किया जाता है, यह इन दोनों भावनाओं में अन्तर है ।

प्रश्न २०७—अशुचित्वानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—रजवीर्यमल से उत्पन्न, मल को ही उत्पन्न करने वाले, मल से ही भरे देह की अशुचिता चिन्तवन करने और अशुचि देह से विरक्त होकर सहज शुचि चैतन्यस्वभाव की भावना करने को अशुचित्वानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २०८—अशुचित्वानुप्रेक्षा से क्या लाभ होता है?

उत्तर—देह की अशुचिता की भावना से देह से विरक्ति होती है और देह से विरक्ति होने के कारण देहसंयोग भी यथा शीघ्र समाप्त हो जाता है तब परमपवित्र निज ब्रह्म में स्थित होकर यह अन्तरात्मा दु:खों से मुक्त हो जाता है ।

प्रश्न २०९—आस्रवानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—मिथ्यात्व, कषाय आदि विभावों के कारण ही आस्रव होता है, आस्रव ही संसार व समस्त दु:खों का मूल है—इस प्रकार मिथ्यात्व कषायरूप आस्रवों में होने वाले दोषों के चिन्तवन करने व निरास्रव निजपरमात्मतत्त्व की भावना करने को आस्रवानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २१०—आस्रवानुप्रेक्षा से क्या लाभ होता है?

उत्तर—आस्रव के दोषों के परिज्ञान और उससे दूर होने के चिन्तवन के फलस्वरूप यह आत्मा निरास्रव निज परमात्मतत्त्व के उपयोग के बल से आस्रवों से निवृत्त हो जाता है और अनन्तसुखादि अनन्तगुणों से परिपूर्ण सिद्धावस्था का अधिकारी हो जाता है ।

प्रश्न २११—संवरानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—जैसे जहाज के छिद्र के बन्द हो जाने पर पानी का आना बन्द हो जाता है जिससे जहाज किनारे के नगर को प्राप्त कर लेता है, इसी प्रकार शुद्धात्मसंवेदन के बल से आस्रव का छिद्र बन्द हो जाने पर कर्म का प्रवेश बन्द हो जाता है, जिससे आत्मा अनन्तज्ञानादिपूर्ण मुक्तिनगर को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार संवर के गुणों का चिन्तवन करने और परमसंवरस्वरूप निज शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना करने को संवरानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २१२—संवरानुप्रेक्षा से क्या लाभ है?

उत्तर-परमसंवरस्वरूप निजशुद्ध कारणपरमात्मा की भावना से आस्रव की निवृत्ति होती है । संवरतत्त्व मोक्षमार्ग का मूल है, इसकी सिद्धि से मोक्ष प्राप्त होता है ।

प्रश्न २१३—निर्जरानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—जैसे अजीर्ण होने से मलसञ्चय होने पर आहार को त्याग कर औषधी लेने से मल निर्जरित हो जाता है याने दूर हो जाता है, इसी तरह अज्ञान होने से कर्मसञ्चय होने पर आत्मा मिथ्यात्वरागादि को छोड़कर सुख दुःख में समतारूप परमऔषधि को ग्रहण करता है, जिससे कर्ममल निर्जरित करके याने दूर करके परमसुखी हो जाता है इस प्रकार निर्जरा तत्त्व के चिन्तवन करने व स्वभावत: परममुक्त निजचैतन्यस्वभाव की भावना करने को निर्जरानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २१४—निर्जरानुप्रेक्षा से क्या लाभ होता है?

उत्तर—शुद्धोपयोगरूप निर्जरा परिणामों के बल से एक देश मुक्त हो-होकर सर्वदेश कर्मों से मुक्त हो जाता है । इस रहस्य के ज्ञातावों को निर्जरानुप्रेक्षा से कल्याणमार्ग की इस प्रगति के लिये अन्त:प्रेरणा मिलती है ।

प्रश्न २१५—लोकानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—लोक की रचनाओं का विचार करते हुए लोक के ऐसे-ऐसे स्थानों में यह जीव मोहभाववश अनन्त बार उत्पन्न हुआ, ऐसे चिन्तवन करने और स्वभावत: अजन्मा एवं अनादिसिद्ध चैतन्यस्वरूप निज निश्चय लोक की भावना करने को लोकानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २१६—लोक को किसने बनाया?

उत्तर—लोक समस्त द्रव्यों के समूह को कहते हैं । समस्त द्रव्य जितने आकाश में देखे जाते हैं, पाये जाते हैं उतने आकाश में रहने वाले द्रव्यसमूह के पिण्ड को लोक कहते हैं । समस्त द्रव्य स्वतःसिद्ध हैं, अत: लोक भी स्वतःसिद्ध है । इसे किसी ने नहीं बनाया अथवा सर्वद्रव्य अपना-अपना परिणमन करते रहते हैं, सो सभी द्रव्यों ने लोक बनाया ।

प्रश्न २१७—लोक का आकार क्या है?

उत्तर—सात पुरुष एक के पीछे एक-एक खड़े होकर पैर पसारे हुये और कमर पर हाथ रखे हुये स्थित हों उन जैसा आकार इस लोक का है । केवल मुख जितना आकार छोड़ दिया जावे ।

प्रश्न २१८—लोक का विस्तार क्षेत्र कितना है?

उत्तर—लोक का विस्तार ३४३ धनराजू है । एक राजू असंख्यात योजनों का होता है । एक योजन दो हजार कोश का होता है । एक कोश करीब ढाई मील का होता है । लोक का विस्तार लोक के तीन भागों में बांटकर समझना चाहिये ।

प्रश्न २१९—लोक के तीन भाग कौन-कौन हैं?

उत्तर-—लोक के तीन भाग ये है—(१) अधोलोक, (२) मध्यलोक, (३) ऊर्ध्वलोक ।

प्रश्न २२०—अधोलोक कितने भाग को कहते हैं?

उत्तर—जैसे दृष्टान्त में मनुष्य की नाभि से नीचे का जितना विस्तार है, ऐसे ही लोक के ठीक मध्य से नीचे का जितना विस्तार है उतने भाग को अधोलोक कहते हैं ।

प्रश्न २२१—अधोलोक का कितना विस्तार है?

उत्तर—अधोलोक का उत्सेध ऊपर से नीचे ७ राजू है । बिल्कुल नीचे पूर्व से पश्चिम तक आयाम ७ राजू है और ऊपर क्रम से घट-घटकर एक राजू रह जाता है । दक्षिण से उत्तर में सर्वत्र विष्कम्भ ७-७ राजू है । अत: भूमि ७ में सुख १ जोड़ने से ८ हुये, इसके आधे ४ राजू, यह चौड़ाई का एवरेज हुआ । इसमें लम्बाई ७ राजू का गुणा करने से ४×७=२८ हुआ, इसमें ७ राजू विष्कम्भ का (दक्षिण उत्तर वाला का) गुणा करने से २८×७=१९६ घन राजू अधोलोक का विस्तार है ।

प्रश्न २२२—मध्यलोक का विस्तार कितना है?

उत्तर—लोक के मध्यभाग से ऊपर एक लाख ४० योजन ऊंचे तक न तिर्यग्रूप में चारों ओर असंख्यात योजनों तक याने पूर्व से पश्चिम एक राजू व उत्तर से दक्षिण तक सात राजू प्रमाण मध्यलोक है ।

प्रश्न २२३—ऊर्ध्वलोक का कितना विस्तार है?

उत्तर-—ऊर्ध्वलोक का उत्सेध ७ राजू है । मध्यलोक के ऊपर एक राजू आयाम है व ऊपर ३।। राजू जाकर ५ राजू आयाम है तथा ३।। राजू और ऊपर जाकर एक राजू आयाम है । विष्कम्भ सर्वत्र ७-७ राजू है । यहाँ उत्सेध का अर्थ ऊंचाई है । आयाम का अर्थ पूर्व पश्चिम का विस्तार है । विष्कम्भ का अर्थ दक्षिण उसका विस्तार है । इसका क्षेत्रफल यह है—५+१=६÷२=३×३।।=१०।।×७=७३।।+७३।।=१४७ घनराजू ऊर्ध्वलोक विस्तार है ।

प्रश्न २२४—तीनों लोकों का सम्मिलित विचार कितना हुआ?

उत्तर—अधोलोक का घनराजू १९६ व ऊर्ध्वलोक का घनराजू १४७, दोनों को मिलाकर ३४३ घनराजू विस्तार हुआ । यही तीनों लोकों का सम्मिलित विस्तार है ।

प्रश्न २२५—मध्यलोक का विस्तार क्यों नही जोड़ा गया है?

उत्तर—मध्यलोक का उत्सेध राजू के मुकाबले न कुछ है, इसलिये इसे पृथक् से गिनती में नहीं लिया जा सकता है । यह न कुछ जैसा अंश ऊर्ध्वलोक के बताये गये माप में सबसे नीचे का अंश है ।

प्रश्न २२६—अधोलोक में कैसी रचनायें हैं?

उत्तर—दक्षिण व उत्तर में तीन-तीन राजू क्षेत्र छोड़कर लोक के मध्य में १४ राजू उत्सेध की एक त्रसनाली है, अधोलोक की त्रसनाली के भाग में ७ नरकों की रचना है । नरक ७ पृथ्वीयों में हैं ।

प्रश्न २२७—नरक की ७ पृथ्वियाँ किस क्रम से व्यवस्थित हैं?

उत्तर—इनमें सबसे ऊपर मेरुपर्वत की आधारभूत रत्नप्रभा नाम की पृथ्वी है । इसका बाहुल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन है । इसके भी खरभाग, पंकभाग, अब्बहुलभाग, ये तीन भाग हैं । जिन में खरभाग व पंकभाग में तो भवनवासी व व्यन्तर देवों के आवास हैं, नीचे के अब्बहुलभाग के बिलों में नारक जीव हैं । इससे नीचे एक राजू आकाश जाकर नीचे शर्कराप्रभा नाम की दूसरी पुथ्वी ३२ हजार योजन मोटी है । इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर इसके नीचे बालुकाप्रभा नाम की तीसरी पृथ्वी २८ हजार योजन मोटी है । इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर पंकप्रभा नाम की १४ हजार योजन मोटी चौथी पृथ्वी है ।

इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर २० हजार योजन मोटी धूमप्रभा नाम की पाँचवीं पृथ्वी है । इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर १६ हजार योजन मोटी तमप्रभा नाम की छठवीं पृथ्वी है । इसके नीचे एक राजू आकाश जाकर ८ हजार योजन मोटी महातम: नाम की ७वीं पृथ्वी है । इसके नीचे एक राजू प्रमाण आकाश है ।

प्रश्न २२८—क्या पृथ्वी का माप ७ राजू क्षेत्र से अतिरिक्त है?

उत्तर—पृथ्वी राजू से अतिरिक्त क्षेत्र नहीं है, किन्तु राजु के सामने पृथ्वी का बाहुल्य न कुछसा है, इसलिये नीचे एक-एक राजू आकाश का वर्णन किया है ।

प्रश्न २२९—इन पृथ्वियों के बिल किस प्रकार हैं?

उत्तर—इन पृथ्विथों के इस प्रकार पटल (बिलरचना भाग) हैं—पहिली में १३, दूसरी में ११, तीसरी में ९, चौथी में ७, पाँचवीं में ५, छठी में ३, सातवीं में १ । प्रत्येक पटल में बिल हैं । पृथ्वी के भीतर ही भीतर यह क्षेत्र हैं । इन स्थानों का कहीं भी मुख नहीं है, जो पुथ्वी के ऊपर हो । इसलिये इन्हें बिल कहते हैं ।

प्रश्न २३०—ये बिल कितने बड़े हैं?

उत्तर—कोई बिल संख्यात हजार योजन का है और कोई बिल असंख्यात हजार योजन का है ।

प्रश्न २३१—किस पृथ्वी में कितने बिल हैं?

उत्तर—पहिली में ३० लाख बिल हैं । दूसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथी में १० लाख, पाँचवीं में ३ लाख, छठी में ९९९५ व सातवीं में केवल ५ बिल हैं । इन सबका वर्णन धर्मग्रन्थों से देख लेना चाहिये । विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखते हैं ।

प्रश्न २३२—इन बिलों में रहने वाले नारकी कैसे जीव होते हैं?

उत्तर-—जो जीव जीवहिंसक, चुगल, दगाबाज, चोर, डाकू, व्यभिचारी और अधिक तृष्णा वाले होते हैं वे मरकर नरकगति में जन्म लेते हैं । इन नारकियों को शीत, उष्ण, भूख प्यास आदि की तीव्र वेदना रहती है । वेदना मेटने का वहाँ जरा भी साधन नहीं है । इनकी खोटी देह होती है । ये परस्पर लड़ते, काटते, छेदते रहते हैं । इनका शरीर ही हथियार बन जाता है, ऐसी खोटी विक्रिया है । इनकी आयु कम से कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक ३३ सागर की होती है । लड़ते-लड़ते शरीर के खण्ड-खण्ड हो जाते हैं और पारे की तरह फिर मिल जाते हैं । इनकी बीच में मृत्यु भी नहीं होती ।

प्रश्न २३३-—जीव जिस कर्म के उदय से नारकी होता है?

उत्तर-—नरकायु, नरकगति आदि कर्मों के उदय से जीव नारकी होता है । इन कर्मों का बंध निजस्वभाव के श्रद्धान से च्युत रहकर विषयों की लम्पटता के परिणाम के निमित्त से होता है ।

प्रश्न २३४-—नरकभव के दु:खों से बचने का क्या उपाय है?

उत्तर-—निज स्वभाव की प्रतीति करना नरकभव से मुक्त होने का उपाय है ।

प्रश्न २ ३५—मध्यलोक की क्या-क्या रचनायें हैं?

उत्तर—मध्यलोक एक राजू तिर्यग्विस्तार वाला है इसके ठीक बीच में सुदर्शन नामक मेरूपर्वत है । यह जम्बूद्वीप के ठीक बीच में है । जिस द्वीप में हम रहते हैं यह वही जम्बूद्वीप है इसका विस्तार एक लाख योजन का है । इस द्वीप की दक्षिण दिशा में किनारे पर जम्बूद्वीप के १/१९० भाग में भरतक्षेत्र है । इस भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में हम रहते हैं । इसके उत्तर की ओर २/१९० विस्तार में हिमवान पर्वत है । ४/१९० विस्तार में हैमवत् क्षेत्र है, इसमें सदा जघन्यभोगभूमि रहती है । ८/१९० विस्तार में महाहिमवान पर्वत है । १६/१९० विस्तार में हरिक्षेत्र है, यहाँ सदा मध्यम भोगभूमि रहती है । ३२/१९० विस्तार में निषध पर्वत है । ६४/१९० विस्तार में विदेहक्षेत्र है । इसके थोड़े से देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र को छोड़कर जिसमें कि सदा उत्तमभोगभूमि रहती है, समस्त विदेह क्षेत्र से सदा मुक्ति का मार्ग चलता रहता है तथा अनेक भव्य जीव मुक्त होते रहते हैं । यहाँ तीर्थंकर भी सदा पाये जाते हैं । इसके पश्चात् उत्तर की ही ओर ३२/१९० विस्तार में नील पर्वत है । १६/१९० विस्तार में रम्यक्क्षेत्र है । यहाँ सदा मध्यमभोगभूमि रहती है । ८/१९० विस्तार में रुक्मि पर्वत है । ४/१९० विस्तार में हैरण्यवत्क्षेत्र है, इसमें सदा मध्यमभोगभूमि रहती है । २/१९० विस्तार में शिखरी पर्वत है । १/१९० विस्तार में ऐरावत क्षेत्र है, इसमें भरतक्षेत्रवत् रचना रहती है । भरत ऐरावत क्षेत्रों में बीच में विजयार्द्ध पर्वत भी है । विदेह में निषध व नील से मेरू के समीप तक दो-दो गजदन्त पर्वत हैं । कुलाचल आदि पर्वतों पर अकृत्रिम जिनभवन व जिनचैत्यालय हैं ।

प्रश्न २३६—जम्बूद्वीप से आगे क्या है?

उत्तर—जम्बूद्वीप से आगे चारों ओर लवणसमुद्र है । इसके दोनों तरफ वेदिका है । इस समुद्र का विस्तार एक ओर दो लाख योजन है । यह चूड़ी के आकार का गोल याने वृत्त है ।

प्रश्न २३७—लवण समुद्र के आगे क्या है?

उत्तर—लवणसमुद्र से आगे चारों ओर धात की खण्ड नाम का द्वीप है । इसमें दक्षिण और उत्तर में वेदिका से वेदिका तक एक-एक इष्वाकार पर्वत है, जिससे दो भाग इस द्वीप के हो जाते हैं । प्रत्येक भाग ७ क्षेत्र, ६ कुलाचल, १ मेरुपर्वत है । इस तरह धातकी खण्ड में १४ क्षेत्र, १२ कुलाचल, २ मेरु हैं । इनमें व्यवहार का वर्णन भरत के क्षेत्रों की तरह जानना । इस द्वीप का विस्तार एक ओर ४ लाख योजन है । यह भी चूड़ी के आकार का वृत्त है व आगे सभी द्वीप समुद्र इसी प्रकार गोल एक दूसरे को घेरे हुये हैं ।

प्रश्न २३८—धातकी खण्ड द्वीप से आगे क्या है?

उत्तर—धातकी खण्ड द्वीप से आगे चारों ओर कालोद समुद्र है । इसके दोनों ओर दो वेदिकायें हैं । इसका विस्तार एक ओर ८ लाख योजन है ।

प्रश्न २३९—कालोद समुद्र से आगे क्या है?

उत्तर—कालोद समुद्र से आगे पुष्करवर द्वीप है । इसका एक ओर विस्तार १६ लाख योजन है । इसके बीच चारों ओर गोल मानुषोत्तनामा पर्वत है । इस पूर्वार्द्ध में धातकी खण्ड द्वीप जैसी रचना है । यहाँ तक ही मनुष्यलोक है । इससे परे उत्तरार्द्ध में तथा आगे-आगे, द्वीप और समुद्र असंख्यात हैं । उनमें से अन्तिम द्वीप

व समुद्र को छोड़कर सबमें कुभोगभूमि जैसा व्यवहार है ।

प्रश्न २४०—अन्तिम द्वीप में व सागर में क्या रचना है?

उत्तर—स्वयंभूरमण नामक अन्तिम द्वीप और स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्र में कर्मभूमि जैसी रचना है, किन्तु उसमें हैं तिर्यञ्च ही । इसी द्वीप व समुद्र में बहुत बड़ी अवगाहना वाले भ्रमर, बिच्छू, मत्स्य आदि पाये जाते हैं ।

मध्यलोक का वर्णन भी बहुत बड़ा है, इसे धर्मग्रन्थों से देख लेना चाहिये । विस्तारमय से यहाँ नहीं लिखा है ।

प्रश्न २४१—मध्यलोक के वर्णन से हमें क्या प्रेरणा मिलती है?

उत्तर—विदेह की रचना से यह बोध हुआ कि साक्षात् मोक्षमार्ग सदा खुला हुआ है । मध्यलोक में ढाई द्वीप में, नन्दीश्वरद्वीप में व तेरहवें द्वीप में व अन्यत्र अकृत्रिम चैत्यभवन हैं । उनके बोध से भक्ति उमड़ती है । तथा सर्वसार की बात यह है कि यदि निज शुद्ध आत्मतत्त्व का श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप समाधिभाव हो गया तो संसार के दुःखों से मुक्त हुआ जा सकता है अन्यथा मध्यलोक में भी अनेक प्रकार के कुमानुष व तिर्यञ्च भव धारण करके भी संसार ही बढ़ेगा । यह मनुष्यजन्म अनुपम जन्म है, इसे पाकर भेदरत्नत्रय व यथायोग्य अभेदरत्नत्रय की भावना से अपना निज निश्चयलोक सफल करो ।

प्रश्न २४२—ऊर्ध्वलोक की क्या-क्या रचनायें हैं?

उत्तर—मेरु की चूलिका से ऊपर लोक के अन्त तक ऊर्ध्वलोक कहलाता है । जिसकी ७ राजू त्रसनाली में देवों के विमान हैं और कई सर्वोपरि सिद्धलोक हैं । ऊर्ध्वलोक की त्रसनाली में पहिले ऊपर-ऊपर ८ कल्पों में १६ स्वर्ग हैं । इसके ऊपर ग्रैवेयकविमान हैं, इसके ऊपर अनुदिश विमान है, इसके ऊपर अनुत्तरविमान हैं, इसके ऊपर सिद्धशिला है और इसके आगे ऊपर सिद्धलोक हैं ।

प्रश्न २४३—प्रथमकल्प में कैसी रचना है?

उत्तर—सुदर्शन मेरु की चूलिका के ऊपर १।। राजू तक प्रथम कल्प है । इस कल्प में ३१ पटल हैं अर्थात् ऊपर-ऊपर ३१ जगह विमानों की अवस्थिति है । जैसे पहिले पटल में मध्य में ऋतुनामक इन्द्रक विमान है, यह विमान मेरु चूलिका के ऊपर बाल की मोटाई प्रमाण अन्तर छोड़कर अवस्थित है । इसकी चारों दिशाओं में ६३-६३ विमान हैं, विदिशाओं में ६२-६२ विमान हैं, मध्य में अनेक विमान हैं । ये विमान कई संख्यात योजन विस्तार वाले हैं और कई असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं । इसी तरह ऊपर के पटलों में रचना जानना, केवल दिशावों में व विदिशावों में १-१ विमान कम होते गये हैं । प्रकीर्णक विमानों की भी संख्या यथासम्भव कम होती गई है ।

उक्त ३१ पटलों में उत्तरदिशा, आग्नेयदिशा, वायव्यदिशा की पंक्ति के विमानों व आग्नेय उत्तर के बीच व वायव्य उत्तर दिशा के मध्य के प्रकीर्णक विमानों का अधिपति ईशान इन्द्र है और शेष सब विमानों का याने दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, ईशान, नैऋत—इन पांच दिशाओं की पंक्ति के विमानों व छहों अन्तरालों के प्रकीर्णक

विमानों का अधिपति सौधर्म इन्द्र है । सौधर्म इन्द्र दक्षिणेन्द्र कहलाता है और ईशानइन्द्र उत्तरेन्द्र कहलाता है । दक्षिणेन्द्र के विमान अधिक होते हैं, उत्तरेन्द्र के विमान कम होते हैं । इन सब विमानों में देव देवियां रहती हैं । इन देवों की आयु प्राय: दो सागर तक की होती है । देवियों की आयु अनेक पल्य प्रमाण होती है । ऊपर के स्वर्गों आदि के देवों की आयु बढ़ती जाती है । देवियां ८ कल्पों तक ही होती हैं और उनकी आयु पल्यों प्रमाण ही बढ़कर भी रहती है । सब देवियों की उत्पत्ति पहिले कल्प में ही होती है । सब विमानों में अकृत्रिम जिनचैत्यभवन भी हैं ।

प्रश्न २४४—द्वितीय कल्प में कैसी रचना है?

उत्तर—प्रथम कल्प से ऊपर १।। राजू पर्यन्त रहने वाले द्वितीय कल्प में ७ पटल हैं । इनमें दक्षिणेन्द्र सनत्कुमार इन्द्र है और उत्तरेन्द्र महेन्द्र इन्द्र है । दक्षिण विभाग का नाम सानत्कुमार स्वर्ग है और उत्तर विभाग का नाम माहेन्द्र स्वर्ग है ।

प्रश्न २४५—तृतीय कल्प में क्या रचना है?

उत्तर—तृतीय कल्प में ४ पटल हैं—दक्षिण विभाग का नाम ब्रह्म स्वर्ग है और उत्तर विभाग का नाम ब्रह्मोत्तर स्वर्ग है । यह कल्प द्वितीय कल्प से ऊपर आधा राजू पर्यन्त अवस्थित है । इस कल्प का ब्रह्म नामक एक ही इन्द्र है ।

प्रश्न २४६—चतुर्थ कल्प की कैसी रचना है?

उत्तर—तृतीय कल्प से ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाश में चतुर्थ कल्प है । इसमें दो पटल हैं । इनके दक्षिणविभाग का नाम लान्तव स्वर्ग है व उत्तर विभाग का नाम कापिष्ठ स्वर्ग है । इस कल्प का इन्द्र लान्तव नामक एक ही है ।

प्रश्न २४७—पञ्चम कल्प की कैसी रचना है?

उत्तर—चतुर्थ कल्प से ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाश में पच्छम कल्प है । इसमें पटल एक है । इसके दक्षिण विभाग का नाम शुक्र स्वर्ग है और उत्तर विभाग का नाम महाशुक्र स्वर्ग है । इसमें शुक्र नामक एक ही इन्द्र है ।

प्रश्न २४८—छठे कल्प को कैसी रचना है?

उत्तर—पञ्चम कल्प से ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाश में छठा कल्प है । इसमें भी पटल एक है । इसके दक्षिण विभाग का नाम शतार स्वर्ग है और उत्तर विभाग का नाम सहस्रार स्वर्ग है । इस कल्प में शतार नामक एक ही इन्द्र है ।

प्रश्न २४९—सातवें कल्प की कैसी रचना है?

उत्तर-छठे कल्प से ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाश में सातवां कल्प है । इसमें ३ पटल हैं । जिनके दक्षिण विभाग का नाम आनत स्वर्ग है और अधिपति आनतनामक इन्द्र है । उत्तर विभाग का नाम प्राणत स्वर्ग है और अधिपति प्राणत इन्द्र है ।

प्रश्न २५०—आठवें कल्प की कैसी रचना है?

उत्तर—सातवें कल्प के ऊपर आधा राजू पर्यन्त आकाश में आठवां कल्प है । इसमें ३ पटल हैं । जिनके दक्षिण विभाग का नाम आरण स्वर्ग है और अधिपति आरणनामक इन्द्र है । उत्तर विभाग का नाम अच्युत स्वर्ग है और अधिपति अच्युत इन्द्र है ।

प्रश्न २५१—ग्रैवेयकविमानों की कैसी रचना है?

उत्तर—आठवें कल्प के ऊपर १ राजू पर्यन्त आकाश में ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तर व सिद्धशिला एवं सिद्धलोक हैं । जिसमें ग्रैवेयक की रचना इस प्रकार है-ग्रैवेयक में पटल ९ हैं । भव्यमिथ्यादृष्टि जीव व अभव्य भी ग्रैवेयकों तक के देवों में ही जन्म ले सकते हैं । किन्तु अभव्य जीव दक्षिणेन्द्र, लोकान्तिक देव, लोकपाल व प्रधान दिक्पाल नहीं हो सकते हैं । ग्रैवेयकों में उत्पत्ति मुनिलिङ्ग धारण करने वाले तपस्वी साधुवों की ही हो सकती है, चाहे वे द्रव्यलिङ्गी हों या भावलिङ्गी । ग्रैवेयकवासी देव सब अहमिन्द्र हैं ।

प्रश्न २५२—अनुदिश विमानों की कैसी रचना है?

उत्तर—ग्रैवेयक से ऊपर अनुदिश है । इसमें १ पटल है व कुल विमान ९ हैं—१ मध्य में और ८ दिशाओं में । इन विमानों में सम्यग्दृष्टि मुनि ही उत्पन्न हो सकता है । ये सब अहमिन्द्र होते हैं । इनकी आयु जघन्य ३१ सागर व उत्कृष्ट ३२ सागर की होती है ।

प्रश्न २५३—अनुत्तर विमानों की कैसी रचना है?

उत्तर—अनुदिश से ऊपर अनुत्तर है । इसमें १ पटल है व विमान केवल ५ हैं । मध्य में तो सर्वार्थसिद्ध नामक विमान है, पूर्व में विजय, दक्षिण में वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर में अपराजित विमान है । सर्वार्थसिद्धि के देवों की आयु ३३ सागर है । ये १ भव मनुष्य का धारण कर मोक्ष को प्राप्त होते हैं । विजयादिक ४ विमानों के वासी देवों की आयु जघन्य ३२ सागर व उत्कृष्ट ३३ सागर की होती हैं । ये दो भवावतारी होते हैं । ये सब अहमिन्द्र हैं ।

प्रश्न २५४—सिद्धशिला कहां पर और कैसी है?

उत्तर—सर्वार्थसिद्धि विमान की चोटी से १२ योजन ऊपर सिद्धशिला है । यह मनुष्य लोक के सीध में ऊपर है और ४५ लाख योजन की विस्तार वाली है, इसकी मोटाई ८ योजन है । इसका आकार छत्र की तरह है । इस पर सिद्धभगवान तो विराजमान नहीं हैं, किन्तु इसके कुछ ऊपर इस सिद्धशिला के विस्तार प्रमाण क्षेत्र में सिद्धभगवान विराजमान है । बीच में वातवलयों के सिवाय अन्य कोई रचना नहीं है, अत: इसे सिद्धशिला कहते हैं ।

प्रश्न २५५—सिद्धलोक का संक्षिप्त विवरण क्या है?

उत्तर —सिद्धशिला के ऊपर योजन बाहुल्य वाला धनोदधि वातवलय है । इसके ऊपर योजन बाहुल्य वाला घनवातवलय है, इसके ऊपर बाहुल्य प्रमाण तनुवातवलय है । इस तनुवातवलय के अन्त में सिद्धभगवान विराजमान हैं । जो साधु मनुष्यलोक में जिस स्थान से कर्ममुक्त हुए हैं उसकी सीध में ऊपर एक

समय में ही आकर लोक के अंत तक यहाँ स्थित हैं । यहीं लोक का भी अन्त हो जाता है ।

प्रश्न २५६—यह ३४३ घनराजूप्रमाण लोक किसके आधार पर स्थित है?

उत्तर—इस लोक के सब ओर घनोदधिवातवलय है । उसके बाद घनवातवलय है, उसके बाद तनुवातवलय है । इन वातवलयों के आधार पर सब लोक अवस्थित हैं । ये वातवलय भी लोक में ही शामिल हैं । वातवलय वायु स्वरूप होने से ये किसी के आधार पर नहीं हैं, मात्र आकाश ही उनका आधार है ।

प्रश्न २५७—इस लोकानुप्रेक्षा से विशेष लाभ क्या है?

उत्तर—लोक के आकार रचनाओं के बोधरूप विशेष परिचय से उत्कृष्ट वैराग्य होता है और इसको संस्थान का विचय होने से संस्थानविचय नाम का उत्कृष्ट धर्मध्यान होता है ।

प्रश्न २५८—बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—निज शुद्धआत्मतत्त्व का श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप बोधि का पाना अत्यन्त दुर्लभ है । इस प्राप्त हो रही बोधि की वृद्धि और दृढ़ता करना चाहिये, ऐसे चिन्तवन करने और समाधि की और उन्मुख होने को बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २५९—बोधि अत्यन्त दुर्लभ कैसे है?

उत्तर—इस जीव ने अनादिकाल ने तो एकेन्द्रिय (साधारणवनस्पति) मैं ही रहकर अनन्त काल व्यतीत किया, उसके पश्चात् सुयोग हुआ तो उत्तरोत्तर दुर्लभ द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, संज्ञी, मनुष्य, उत्तम देश, उत्तम कुल, इन्द्रियों का सामर्थ्य, दीर्घआयु, प्रतिभा, धर्मश्रवण, धर्मग्रहण, धर्मश्रद्धान, विषयसुखों की निवृत्ति, कषायों की निवृत्ति व रत्नत्रय की प्राप्ति होती है । अत: आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान व आत्माचरण रूप बोधिदुर्लभ है ।

प्रश्न २६०—इस जीव ने निम्न दशाओं में रहकर अनन्त परिवर्तन क्यों किये?

उत्तर—मिथ्यात्व, विषयासक्ति, कषाय आदि परिणामों के कारण इस जीव की निम्न दशा हुई ।

प्रश्न २६१—बोधि प्राप्त करके यदि प्रमाद रहा तो क्या हानि होगी?

उत्तर—अत्यन्त दुर्लभ रत्नत्रयरूप बोधि को पाकर यदि प्रमाद किया तो संसाररूपी भयानक वन में दीन होकर चिरकाल तक भ्रमण कर दुःख भोगना पड़ेगा ।

प्रश्न २६२—बोधि और समाधि में क्या अन्तर है?

उत्तर—जिस जीव के सम्यग्दर्शन नहीं है उस जीव को सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति होना सो तो बोधि है और रत्नत्रय बनाये रहना, वृद्धि करना तथा भवान्तर में ले जाना सो समाधि है । निर्वाण प्राप्त कर लेना यह परमसमाधि है ।

प्रश्न २६३—धर्मानुप्रेक्षा किसे कहते हैं?

उत्तर—धर्म के बिना ही यह जीव सहजसुख से दूर रह कर इन्द्रियाभिलाषाजनित दुःखों को सहता हुआ ८४ लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ चला आया है । जब इस जीव को धर्म का शरण हो जाता है तब

राजाधिराज चक्रवर्ती देवेन्द्र जैसे उत्कृष्ट पदों के सुख, भोगकर अभेद रत्नत्रयभावनारूप परमधर्म के प्रसाद से अरहन्त होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है । इत्यादि धर्म की उत्कृष्टता के चिन्तवन करने और धर्माचरण को धर्मानुप्रेक्षा कहते हैं ।

प्रश्न २६४—धर्म का क्या स्वरूप है?

उत्तर—धर्म के स्वरूप का कई प्रकारों से वर्णन है, उन्हें क्रम से लिखते हैं । उनमें प्राय: उत्तरोत्तर पहिले की अपेक्षा आगे को व्यवहार या बहिरङ्गरूप लक्षण जानने चाहियें:—-

(१) अखण्ड चैतन्यस्वभाव को धर्म कहते हैं ।

(२) अखण्ड चैतन्यस्वभाव के पूर्ण अनुरूप परिणमन को धर्म कहते हैं ।

(३) मोह, क्षोभ से सर्वथा मुक्त आत्मपरिणमन को धर्म कहते हैं ।

(४) रागद्वेष की बाधारहित परमअहिंसा को धर्म कहते हैं ।

(५) निज शुद्धात्मा के श्रद्धान, ज्ञान, आचरणरूप अभेदरत्नत्रय को धर्म कहते हैं ।

(६) शुद्धात्मा के संवेदन को धर्म कहते हैं ।

(७) शुद्धात्मा के अवलम्बन को धर्म कहते हैं ।

(८) शुद्धात्मतत्त्व के उपयोग को धर्म कहते हैं ।

(९) शुद्धात्मतत्त्व की भावना को धर्म कहते हैं ।

(१०) शुद्धात्मतत्त्व की प्रतीति दृष्टि को धर्म कहते हैं ।

(११) उत्तम क्षमादि दस विशुद्ध भावों को धर्म कहते हैं ।

(१२) जीवादि तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान, यथार्थ ज्ञान और अव्रतत्यागरूप भेदरत्नत्रय को धर्म कहते हैं ।

(१३) जो दु:खों से छुटाकर उत्तम सुख में ले जावे उसे धर्म कहते हैं ।

(१४) समता, वन्दनादिक साधु के षट् आवश्यकों के पालन करने को धर्म कहते हैं ।

(१५) देवपूजा गुरुपास्ति आदिक श्रावक के ६ कर्तव्यों के पालन करने को धर्म कहते हैं ।

(१६) जीवदया करने को धर्म कहते हैं ।

प्रश्न २६५—परीषहजय नामक भावसंवर विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर—अनेक परीषहों, वेदनाओं का तीव्र उदय होने पर भी सुख-दु:ख, लाभ, अलाभ आदि में समतापरिणाम के द्वारा जो कि सम्वर और निर्जरा का कारण है, निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न सहज आनन्द से चलित नहीं होने को परीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २६६—परीषहजय कितने प्रकार के हैं?

उत्तर—परीषहजय २२ प्रकार के हैं—(१) क्षुधापरीषहजय, (२) तृषापरीषहजय, (३) शीतपरीषहजय, (४) उष्णपरीषहजय, (५) दंशमशकपरीवहजय, (६) नाग्न्यपरीषहजय, (७) अरतिपरीषहजय, (८) स्त्रीपरीषहजय, (९) चर्यापरीषहजय, (१०) निषद्यापरीषहजय, (११) शय्यापरीषहजय, (१२) आकाशपरीषहजय, (१३)

बधपरीषहजय, (१४) याचनापरीषहजय, (१५) अलाभपरीषहजय, (१६) रोगपरीषहजय, (१७) तृणस्पर्शापरीषहजय, (१८) मलपरीषहजय, (१९) सत्कारपुरस्कारपरीषहजय, (२०) प्रज्ञापरीषहजय, (२१) अज्ञानपरीषहजय, (२२) अदर्शनपरीषहजय ।

प्रश्न २६७—क्षुधापरीषहजय का क्या स्वरूप है?

उत्तर—मास दो मास, चार मास, छः मास तक के उपवास होने पर भी अथवा एक वर्ष तक आहार न करने पर भी अथवा अनेक प्रकार की तपस्याओं से शरीर कृश होने पर भी क्षुधावेदना के कारण अपने विशुद्ध ध्यान से च्युत न होना और मोक्षमार्ग में विशेष उत्साह से लगना सो क्षुधापरीषहजय है । ये साधु ऐसे समय ऐसा भी चिन्तवन करते हैं कि परतन्त्र होकर नरकगति में सागरों पर्यन्त क्षुधा सही । तिर्यंच पर्याय में पर के वश होकर मनुष्य पर्याय में जेलखाने आदि में रहकर अनेक क्षुधावेदनायें सहीं । यहाँ तो यह वेदना क्या है जब कि मैं आत्माधीन, स्वतन्त्र हूँ आदि ।

प्रश्न २६८—तृषापरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—प्रतिदिन भ्रमण करते रहने पर भी कडुवा, तीखा आदि यथाप्राप्त भोजन करने पर भी आतापनयोग आदि अनेक तपस्या करनेपर भी स्नान, परिसेवन आदि का परित्याग करने वाले साधु के आत्मध्यान से विचलित न होने और संतोषजल से तृप्त रहने को तृषापरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २६९—शीतपरीषहजय का क्या स्वरूप है?

उत्तर—तीव्र शीत ऋतु में हवा, तुषार के बीच मैदान में, वन में आत्मसाधना के अर्थ आवास करने पर भी पूर्व के आरामों का स्मरण न करते हुए नरकादि की शीतवेदनाओं का परिज्ञान रखने वाले साधु के शीतवेदना के कारण आत्मसाधना से चलित न होने को शीतपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७०—उष्णपरीपहजय किसे कहते हैं?

उत्तर-—तीव्र ग्रीष्मकाल में तस मार्ग पर विहार करने पर भी, जलते हुये वन के बीच रहने पर भी एवं अन्य ऐसे अनेक प्रसङ्ग होने पर भी भेदविज्ञान के बल से समतापरिणाम में स्थिर रहने को उष्णपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७१—दंशमशकपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—डांस, मच्छर, बिच्छू, चींटी आदि कीटों के काटने से उत्पन्न हुई वेदना को आत्मीय आनन्द के अनुरागवश क्षमता से सहन करने को दंशमशकपरीषजय कहते हैं ।

प्रश्न २७२—नाग्न्यपरीषह जय किसे कहते हैं?

उत्तर—कामिनी निरीक्षण आदि चित्त को मलिन करने वाले अनेक कारणों के मिलने पर भी सहजस्वरूप के साधक नग्नस्वरूप रहने की प्रतिज्ञा में स्थिर रहने और निर्विकार रहने को नाग्न्यपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७३—अरतिपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—अनिष्ट पदार्थों का समागम हो जाने पर भी पूर्व रति का स्मरण न करते हुये अरति याने विरोध,

ग्लानि न करने और आत्मसाधना में बने रहने को अरतिपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७४—स्त्रीपरीषहजय किसे कहते है?

उत्तर—रूपयौवनगर्वोन्मत्त युवती के द्वारा एकान्त में नाना अनुकूल प्रयत्न करने पर भी निर्विकार रहने को स्त्रीपरीपहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७५—चर्यापरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—गुरुजनों की चिरकाल तक सेवा करने से जिनका ज्ञान, ब्रह्मचर्य और वैराग्य दृढ़ हो गया, ऐसे साधु के गुरु आज्ञा से एकाकी विहार करते हुये पैर में कांटा, कंकड़ आदि तीक्ष्ण नुकीली चीज के छिद जाने पर भी पूर्वानुभूत सवारी के, आराम का स्मरण न करते हुये समता से वेदना के सहन कर लेने और आत्मचर्या में उद्यत रहने को चर्यापरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७६—निषद्यापरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—भयङ्कर वन में, कङ्करीले व स्थंडिल प्रदेश पर ध्यान करते समय व्याधि, उपसर्ग आदि की बाधाओं को समता से सहकर आसन से, कायोत्सर्ग से चलायमान न होने और अपने आप में स्थित होने को निषद्यापरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७७—शय्यापरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—स्वाध्याय आदि आवश्यक कर्तव्यों के करने से हुये शारीरिक थकान के निराकरणार्थ तिकोने, गठीले, कंकरीले आदि भूमि पर एक करवट, दण्डवत् आदि से शयन करते हुये खेद न मानने को शय्यापरीषहजय कहते हैं । साधु इस समय कोई आकुलता नहीं करते हैं । जैसे—यह वन हिंसक जन्तुओं से व्याप्त है, जल्दी निकल जाना चाहिये अथवा कब रात खत्म होती है आदि ।

प्रश्न २७८—आक्रोशपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी के द्वारा बाणों की तरह मर्मभेदी दुर्वचन, गाली आदि के प्रयोग किये जाने पर भी प्रतीकार में समर्थ होकर भी उन्हें क्षमा कर देने और अपने में विकार उत्पन्न न होने देने को आक्रोशपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २७९—बधपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—किसी चोर, डाकू, बैरी आदि के द्वारा मारे पीटे व प्राणघात किये जाने पर भी अबध्य शुद्धात्मद्रव्य के अनुभव में स्थिर रहने को बधपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८०—याचनापरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—कितनी ही व्याधि अथवा क्षुधादि की वेदना होने पर भी औषधि आहार आदि की याचना व इशारा आदि न करने और अपने चैतन्यस्वभाव वैभव की दृष्टि से संतुष्ट रहने को याचनापरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८१—अलाभपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—कितनी ही वेदना का प्रसङ्ग होने पर भी आहार, औषधि आदि का अलाभ होने पर, लाभ से

अलाभ को श्रेयस्कर समझकर धैर्य से विचलित न होने और आत्मलाभ से तृप्त रहने को अलाभपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न२८२—रोगपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—कष्ट आदि अनेक दुःख रोगों के होने पर उनके निवारण करने का ऋद्धि बल से सामर्थ्य होने पर भी निर्विकल्पसमाधि की रुचि के कारण प्रतीकार न करने, समता से उसे सहने और निरामय आत्मस्वरूप के लक्ष्य से चलित न होने को रोगपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८३—तृणस्पर्शपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—नुकीला तृण, कंकरीली भूमि, पत्थर की शिला आदि पर विहार व्याधि आदि के कारण हुए देहजश्रम के निवारणार्थ शयन आसन करते हुये खेद न मानने और स्वरूपस्पर्श की ओर ध्यान बनाये रहने को तृणस्पर्शपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८४—मलपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—पसीने के मल से दाद, खाज, छाजन आदि तक की वेदनायें हो जाने पर भी पीड़ा की ओर लक्ष्य न देने, जीवदया के भाव से रगड़ना, उबटन आदि न करने और कर्ममल दूर करने वाले स्वानुभव के तप में लीन रहने को मलपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८५—सत्कारपुरस्कारपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—दूसरों के द्वारा प्रशंसा, सम्मान किये जाने पर प्रसन्न न होने व निन्दा अपमान किये जाने पर रुष्ट न होने तथा अनेक चातुर्य तप होने पर भी कोई मेरी मान्यता नहीं करता, ऐसा भाव न लाने और निज चैतन्यस्वभाव की महिमा में लगे रहने को सत्कारपुरस्कारपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८६—प्रज्ञापरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—मिथ्याप्रवादियों पर विजय प्राप्त करने पर भी, अनेक विद्यावों के पारगामी होने पर भी गर्व न करने और निज विज्ञानघनस्वभाव में उपयुक्त रहने को प्रज्ञापरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८७—अज्ञानपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—अनेक तपों को चिरकाल से करते रहने पर भी मुझे अवधिज्ञान आदि कोई प्रकृष्ट ज्ञान नहीं हुआ, बल्कि मुझे लोग मंदबुद्धि, मूर्ख आदि कहते हैं, इस प्रकार के अज्ञानजनित खेद न करने और ज्ञानसामान्य स्वभाव की दृष्टि द्वारा प्रसन्न रहने को अज्ञानपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८८—अदर्शनपरीषहजय किसे कहते हैं?

उत्तर—महोपवासादि अनेक तपस्यावों के करने पर भी अब तक कोई अतिशय या प्रातिहार्य प्रकट नहीं हुआ । मालूम होता है कि जो यह शास्त्रों में वर्णित है कि महोपवासादि तप के माहात्म्य से प्रातिहार्य या ज्ञानातिशय हो जाते हैं यह मिथ्या है, तप करना व्यर्थ है ऐसे दुर्भाव न होने व सत्यश्रद्धान से चलित न होकर आत्मदर्शन की और बने रहने को अदर्शनपरीषहजय कहते हैं ।

प्रश्न २८९—साधु के एक समय में अधिक से अधिक कितनी परीषहों का विजय हो जाता है?

उत्तर—साधु के एक समय में अधिक से अधिक १९ परीषहों का विजय हो जाता है । तीन परीषहें इसलिये कम हो जाती हैं कि एक समय में शीत, उष्ण से एक ही होगा व निषद्या, चर्या, शय्या में से एक ही होगा ।

प्रश्न २९०—परीषहजय से क्या-क्या लाभ है?

उत्तर—परीषहजय के लाभ इस प्रकार है—

(१) बिना दुःख के अभ्यास किया हुआ ज्ञान दुख उपस्थित होने पर भ्रष्ट हो सकता है, किन्तु दुःखों में धैर्य बनाने वाले परीषहजय के अभ्यासी का ज्ञान भ्रष्ट नहीं हो सकता, अतः परीषहजय से ज्ञान की दृढ़ता का लाभ है ।

(२) कर्मों का उदय निष्फल टल जाना ।

(३) पूर्वस्थित कर्मों की निर्जरा होना ।

(४) नवीन अशुभ कर्मों का व यथोचित शुभ कर्मों का संवर होना ।

(५) सदा निःशङ्क रहना ।

(६) आगामी भय से मुक्त रहना ।

(७) धैर्य, क्षमा, संतोष आदि की वृद्धि से इस लोक में सुखी रहना ।

(८) पापप्रकृतियों का नाश होने से परलोक में नाना अभ्युदय मिलना ।

(९) सर्व संसार दुःखों से रहित परमानन्दमय मोक्षपद मिलना इत्यादि अनेक लाभ परीषहजय से होते हैं ।

प्रश्न २९१—चारित्रनामक भावसंवरविशेष किसे कहते हैं?

उत्तर—निज शुद्ध आत्मस्वरूप में अवस्थित रहने को चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न २९२—चारित्र के कितने भेद हैं?

उत्तर—चारित्र तो वस्तुतः एक ही प्रकार का होता है, किन्तु उसके अपूर्ण पूर्ण आदि की विपक्षा से ५ प्रकार के होते हैं—(१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापना, (३) परिहारविशुद्धि । (४) सूक्ष्मसाम्पराय, (५) यथाख्यातचारित्र ।

प्रश्न २९३—सामायिकचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—सर्व जीव चैतन्यसामान्यस्वरूप हैं, सब समान है—इस भावना के द्वारा समता परिणाम होने, स्वरूपानुभव के बल से शुभ अशुभ सङ्कल्प विकल्प जाल से शून्य समाधिभाव के होने, निर्विकार निज चैतन्यस्वरूप के अवलम्बन से रागद्वेष से शून्य होने, सुख-दुःख जीवनमरण लाभ अलाभ में मध्यस्थ होने व विकल्परहित परमनिवृत्तिरूप व्रत के पालने को सामायिक चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न २९४—छेदोपस्थापना चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—सर्वविकल्पपरित्यागरूप सामायिक में स्थित न रह सकने पर अहिंसा व्रत, सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, अपरिग्रहव्रत—इन पाँच प्रकार के व्रतों के द्वारा पापों से निवृत्त होकर अपने आपको शुद्धात्मतत्त्व की ओर उन्मुख करने को छेदोपस्थापनाचारित्र कहते हैं ।

अथवा, उक्त पाँच प्रकार के महाव्रतों में कोई दोष लगने पर व्यवहार प्रायश्चित व निश्चय प्रायश्चित द्वारा शुद्ध होकर निज शुद्ध आत्मतत्त्व की ओर उन्मुख होने को छेदोपस्थापनाचारित्र कहते हैं ।

प्रश्न २९५—परिहारविशुद्धिचारित्र किसे कहते है?

उत्तर—रागादि विकल्पों के विशेष पद्धति से परिहार के द्वारा आत्मा की ऐसी निर्मलता प्रकट होना जिससे एक ऋद्धिविशेष प्रकट होती हैं, जिसके कारण विहार करते हुये किसी जीव को रंच भी बाधा न हो, उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं ।

प्रश्न २९६—सूक्ष्म साम्परायचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—सूक्ष्म और स्वानुभवगम्य निज शुद्धात्मतत्त्व के संवेदने रूप जिस चारित्र से अवशिष्ट संज्वलनसूक्ष्मलोभ का भी उपवास या क्षय हो उसे सूक्ष्मसाम्परायचारित्र कहते हैं ।

प्रश्न २९७—यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर—जैसा स्वभाव से सहज शुद्ध, कषायरहित आत्मा का स्वरूप है वैसे ख्यात याने प्रकट हो जाने को यथाख्यातचारित्र कहते हैं ।

प्रश्न २९८—उक्त भावसंवरविशेषों के द्वारा क्या पापकर्म का ही संवर होता है या पुण्यकर्म का भी संवर होता है?

उत्तर—निश्चयरत्नत्रय के साधक व्यवहाररत्नत्रयरूप शुभोपयोग में हुये भावसंवरविशेष मुख्यतया पापकर्म के संवर के कारण हैं, और व्यवहाररत्नत्रय द्वारा साध्य निश्चयरत्नत्रयरूप शुद्धोपयोग में हुये भावसंवरविशेष पाप, पुण्य दोनों कर्मों के संवर करने वाले होते हैं । इस प्रकार संवरतत्त्व का वर्णन करके अब निर्जरातत्त्व का वर्णन करते हैं ।

गाथा ३६

जह कालेण तवेण य भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ।।३६।।

अन्वय—जेण भावेण जहकालेण य तवेण भुत्तरसं कम्मपुग्गलं सडदि च तस्सडणं इति विज्जरा दुविहा णेया ।

अर्थ—जिस आत्मपरिणाम से समय पाकर या तपस्या के द्वारा भोगा गया है रस जिसका, ऐसा कर्मपुद्गल झड़ता है वह और कर्म पुद्गलों का झड़ना—इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की जानना चाहिये ।

प्रश्न १—किस आत्मपरिणाम से कर्मपुद्गल की निर्जरा होती है?

उत्तर—निर्विकार चैतन्यचमत्कारमात्र निजस्वभाव के सम्वेदन से उत्पन्न सहज आनंदरस के अनुभव करने वाले परिणाम से कर्म पुद्गलों की निर्जरा होती है ।

प्रश्न २—अपने समय पर फल देकर झड़ने वाले कर्मों की निर्जरा में भी क्या इस शुद्धात्मसंवेदनपरिणाम की आवश्यकता है?

उत्तर—आवश्यकता तो नहीं है, किन्तु यथाकाल होने वाली निर्जरा भी यदि शुद्धात्मसंवेदन परिणाम के रहते हुये होती है तो वह संवरपूर्वक निर्जरा होने से मोक्षमार्ग वाली निर्जरा कहलाती है ।

प्रश्न ३—यदि अशुद्ध सम्वेदना के रहते हुये यथाकाल निर्जरा हो तो क्या वह निर्जरा नहीं है?

उत्तर—अशुद्धसंवेदन के होते हुये जो यथाकाल निर्जरा होती है वह अज्ञानियों के होती है । ऐसी निर्जरा को उदय शब्द से कहने की प्रधानता है । इसमें थोड़ा कर्मद्रव्य तो झड़ता है और बहुत अधिक कर्मद्रव्य बंध जाता है । यह मोक्षमार्ग सम्बन्धी निर्जरा नहीं है और न इस निर्जरा का यह प्रकरण है ।

प्रश्न ४—अज्ञानी जीव के बिना काल के, पहिले भी तो निर्जरा हो जाती है, उसे क्या कहेंगे?

उत्तर—उदयकाल से पहिले इस तरह झड़ने को उदीरणा कहते हैं । यह उदीरणा भी अशुभ प्रकृतियों की होती है, क्योंकि अज्ञानी जीव के उदीरणा संक्लेशपरिणामवश होती है और अधिक वेदना उत्पन्न करती हुई होती है ।

प्रश्न ५—तप से कर्म समय से पहिले क्यों झड़ जाते हैं?

उत्तर—तप इच्छानिरोध को कहते हैं । जब इच्छा=स्नेह की चिकनाई यो गीलाई नहीं रहती तब कर्मपुञ्ज बालू रेत की तरह स्वयं झड़ जाते हैं ।

प्रश्न ६—क्या कर्मपुञ्ज अटपट झड़ते हैं क्या किसी व्यवस्थासहित झड़ते हैं?

उत्तर—कर्मद्रव्य श्रेणिनिर्जरा के क्रम से निर्जरा को प्राप्त होते हैं । इस श्रेणिनिर्जरा का वर्णन लब्धिसार क्षपणसार ग्रंथ से देखना । यहाँ विस्तार भय से नहीं लिख रहे हैं ।

प्रश्न ७—निर्जरा कितने प्रकार की है?

उत्तर—निर्जरा दो प्रकार की है—(१) भावनिर्जरा और (२) द्रव्यनिर्जरा ।

प्रश्न ८—भावनिर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस आत्मपरिणाम से कर्म झड़ते हैं उस आत्मपरिणाम को भावनिर्जरा कहते

प्रश्न ९—द्रव्यनिर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर—कर्मों के झड़ने को द्रव्यनिर्जरा कहते हैं ।

प्रश्न १०—संवरपूर्वक निर्जरा का मुख्य कारण क्या है?

उत्तर—संवरपूर्वक निर्जरा का मुख्य कारण तप है और जितने परिणाम संवर के कारण हैं वे सब निर्जरा के भी कारण हैं ।

प्रश्न ११—निर्जरा क्या केवल पापकर्मों की होती है या पाप, पुण्य दोनों कर्मों की?

उत्तर—सरागसम्यग्दृष्टि जीवों के प्राय: पापकर्मों की निर्जरा होती है और वीतराग सम्यग्दृष्टियों के पाप व पुण्य दोनों कर्मों की निर्जरा होती है ।

प्रश्न १२—सरागसम्यग्दृष्टियों के पाप के निर्जरा की तरह पुण्य की निर्जरा की तरह पुण्य निर्जरा न होने से क्या संसार की वृद्धि होगी?

उत्तर—संसार के मूल कारण पाप हैं । उनकी तो विशेषतया निर्जरा सम्यग्दृष्टि करता ही है, अत: संसार की वृद्धि नहीं होती तथा पापकर्म की निर्जरा होने से कर्मभार से लघु हुआ यह अन्तरात्मा शीघ्र वीतराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है और तब पाप पुण्य का नाश कर शीघ्र संसारच्छेद कर सकता है ।

इस प्रकार निर्जरातत्त्व का वर्णन करके अब मोक्षतत्त्व का वर्णन करते हैं—

गाथा ३७

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेयो स भावमोक्खो दव्वविमोक्खो य कम्मपुदभावो ।।३७।।

अन्वय—हु अप्पणो जो परिणामो सव्वस्स कम्मणो खयहेदू स भावमोक्खो य कम्मपुदभावो दव्वविमोक्खो णेयो ।

अर्थ—निश्चय से आत्मा का जो परिणाम समस्त कर्म के क्षय का कारण है उसे तो भावमोक्ष और कर्मों के पृथक् हो जाने को द्रव्यमोक्ष जानना चाहिये ।

प्रश्न १—आत्मा का कौनसा परिणाम कर्मक्षय का कारण है?

उतर—निश्चयरत्नत्रयात्मक कारणसमयसाररूप आत्मा का परिणाम कर्मक्षय का कारण है ।

प्रश्न २—कारणसमयसार क्या है?

उत्तर—कारणसमयसार २ प्रकार से जानना चाहिये—(१) सामान्यकारणसमयसार, (२) विशेषकारणसमयसार ।

प्रश्न ३—सामान्यकारणसमयसार किसे कहते हैं?

उत्तर—अनाद्यनन्त, अखण्ड, अहेतुक चैतन्यस्वभाव को सामान्यकारणसमयसार कहते हैं । इसका दूसरा नाम पारिणामिक भाव या परमपारिणामिक भाव है ।

प्रश्न ४—क्या सामान्यकारणसमयसार मोक्ष का कारण नहीं है?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसार की अशुद्ध शुद्ध नाना परिणतियां होती रहती हैं, केवल मोक्ष का ही कारण हो ऐसा नहीं है अथवा उसका स्वयं स्वरूप पर्याय आदि भेद कल्पना से रहित है अत: वह मोक्षहेतु नहीं है ।

प्रश्न ५—सामान्यकारणसमयसार की दृष्टि हुये बिना तो मोक्षमार्ग का भी प्रारम्भ नहीं होता, फिर वही मोक्षहेतु कैसे नहीं है?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसार की दृष्टि, प्रतीति, आलम्बन, अनुभूति ये सब मोक्ष के हेतु हैं, किन्तु सामान्यकारणसमयसार स्वयं न हेतु है और न कार्य है तथा न अन्य कल्पनागत है । यह तो सामान्यस्वरूप है ।

प्रश्न ६—विशेषकारणसमयसार किसे कहते है?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसार की दृष्टि, प्रतीति, आलम्बन, भावना, अनुभूति, अनुरूप परिणति ये सब विशेषकारणासमयसार हैं ।

प्रश्न ७—मोक्ष का साक्षात् हेतु क्या है?

उत्तर—सामान्यकारणसमयसार के अनुरूप परिणमनरूप विशेष कारणसमयसार मोक्ष का साक्षात् हेतु है । इसके दूसरे नाम निश्चयरत्नत्रय, अभेदरत्नत्रय, एकत्व वितर्क अवीचार शुक्लध्यान, परमसमाधि, वीतरागभाव

आदि हैं ।

प्रश्न ८—तब तो विशेषकारणसमयसार का ही ध्यान करना चाहिये?

उतर—नहीं ध्येय तो सामान्यकारणसमयसार होता है । विशेषकारणसमयसार तो कहीं ध्यानरूप और कहीं ध्यान के फलरूप है ।

प्रश्न ९—भावमोक्ष किस गुणस्थान में है?

उत्तर—भावमोक्ष १३ वें गुणस्थान में है और आत्मद्रव्य की अपेक्षा भावमोक्ष याने जीवमोक्ष अतीत गुणस्थान होते ही हो जाता है ।

प्रश्न १०-—द्रव्यमोक्ष किस गुणस्थान में होता है?

उत्तर—घातिया कर्मों की अपेक्षा से द्रव्यमोक्ष १३वें गुणस्थान में है और समस्त कर्म की मुक्ति की अपेक्षा द्रव्यमोक्ष अतीत गुणस्थान होते ही हो जाता है ।

प्रश्न ११-—मुक्तावस्था में आत्मा की क्या स्थिति है?

उत्तर-—मुक्त परमात्मा केवलज्ञान के द्वारा तीन लोक, तीन कालवर्ती सर्वद्रव्य गुणपर्यायों को जानते रहते हैं, केवलदर्शन के द्वारा सर्वज्ञायक आत्मा के स्वरूप को निरन्तर चेतते रहते हैं, अनन्त आनन्द के द्वारा पूर्ण निराकूलतारूप सहज परमआनन्द को भोगते रहते हैं । इसी प्रकार समस्त गुणों के शुद्ध विकास का अनुभव करते रहते हैं ।

प्रश्न १२—किन कर्मप्रकृतियों का किस गुणस्थान में पूर्ण क्षय हो जाता है?

उत्तर—जिस मनुष्यभव में आत्मा मुक्त होता है उसमें नरकायु, देवायु व तिर्यगायु की तो सत्ता ही नहीं है । अनन्तानुबन्धी ४ व दर्शनमोह की ३, इन सात प्रकृतियों का चौथे से लेकर सातवें तक किमी भी गुणस्थान में क्षय हो जाता है । नवमे गुणस्थान में पहिले स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला व नामकर्म की १३ इस तरह १६ का क्षय, पश्चात् अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी ८, पश्चात् नपुंसकवेद, पश्चात् स्त्रीवेद, पश्चात् ६ नोकषाय, पश्चात् पुरुषवेद, पश्चात् संज्वलनक्रोध, पश्चात् संज्वलनमान, पश्चात् संज्वलन माया, इन ३६ प्रकृतियों का क्षय होता है । १०वें गुणस्थान में संज्वलनलोभ का क्षय होता है । १२वें गुणस्थान में ज्ञानावरण की ५, अन्तराय की ५, दर्शनावरण की अवशिष्ट ६—इन १६ प्रकृतियों का क्षय हो जाता है । इस तरह ३+७+३६+१+१६=६३ तिरेसठ प्रकृतियों का नाश हो जाता है और सकलपरमात्मत्व हो जाता है । पश्चात् शेष की ८५ प्रकृतियों का क्षय १४वें गुणस्थान में होता है और गुणस्थानातीत होकर आत्मा निकलपरमात्मा हो जाता है ।

इस प्रकार मोक्षतत्त्व के वर्णन के साथ-साथ तत्त्वों का वर्णन समाप्त हुआ । इन सात तत्त्वों में पुण्य और पाप मिलाने से ९ पदार्थ हो जाते हैं । उन पुण्य और पाप पदार्थों का कथन इस गाथा में बताते हैं—

गाथा ३८

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्यं पावं हवंति खलु जीवा ।
सादं सुहाउ णामं गोदं पुण्णं पराणि पावं च ।।३८।।

अन्वय—सुहअसुहभावजुत्ता जीवा खलु पुण्णं पावं हवंति । सादं सुहाउ णादं गोदं पुण्णं, च पराणि पावं ।

अर्थ—शुभ व अशुभ भाव से युक्त जीव पुण्य और पाप होते हैं । सातावेदनीय, तिर्यग्गायु, मनुष्यायु, देवायु, नामकर्म की शुभ प्रकृतियाँ, उच्च गोत्र ये तो पुण्यरूप हैं और बाकी सब पापप्रकृतियां हैं ।

प्रश्न १—क्या जीव स्वभाव से पुण्य, पापरूप है?

उत्तर—परमार्थ से जीव सहज ज्ञान और आनन्दस्वभाव वाला है इसमें तो बन्धमोक्ष के भी विकल्प नहीं हैं, फिर पुण्य पाप की तो चर्चा ही क्या है ।

प्रश्न २—फिर जीव पुण्यपापरूप कैसे होते हैं?

उत्तर—अनादिबन्ध परम्परागत कर्म के उदय से जीव पुण्यरूप व पापरूप होते हैं ।

प्रश्न ३—पुण्यरूप जीव का क्या लक्षण है?

उत्तर—कषाय की मन्दता होना, आत्मदृष्टि करना, देव गुरु की भक्ति करना, देव गुरु के वचनों में प्रीति करना, व्रत तप संयम का पालन करना, जीवदया करना, परोपकार करना आदि पुण्यरूप जीव के लक्षण हैं ।

प्रश्न ४—पापरूप जीव के लक्षण क्या हैं?

उत्तर—कषाय की तीव्रता होना, मोह करना, देव गुरु से विरोध करना, कुगुरु कुदेव की प्रीति करना, हिंसा करना, झूठ बोलना, चुगली निन्दा करना, चोरी डकैती करना, व्यभिचार करना, परिग्रह की तृष्णा करना, विषयों में आसक्ति करना आदि पापरूप जीव के लक्षण हैं ।

प्रश्न ५—पुण्य के कितने भेद हैं?

उत्तर—पुण्य के दो भेद हैं—(१) भावपुण्य और (२) द्रव्यपुण्य ।

प्रश्न ६—भावपुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर—शुभ भावों करि युक्त जीव को अथवा जीव के शुभ भावों को भावपुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ७—द्रव्यपुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर—साता आदि शुभ फल देने के निमित्तभूत पुद्गल कर्मप्रकृतियों को द्रव्यपुण्य कहते हैं ।

प्रश्न ८—पुण्य प्रकृतियाँ कितनी हैं?

उत्तर-—पुण्य प्रकृतियां ६८ है—(१) सातावेदनीय, (२) तिर्यगायु, (३) मनुष्यायु, (४) देवायु, (५) मनुष्यगति, (६) देवगति, (७) पंचेन्द्रियजाति, (८-१२) पाँच शरीर, (१३-१७) पांच बन्धन, (१८-२२) पाँच संघात, (२३-२५) तीन अंगोपांग, (२६) समचतुरस्रसंस्थान, (२७) वज्रऋषभनाराचसंहनन, (२८-३५) आठ शुभ स्पर्श, (३६-४०) पांच शुभ रस, (४१-४२) दो शुभ गंध, (४३-४७) पांच शुभ वर्ण, (४८) मनुष्यगत्यानुपूर्व्य,

(४९) देवगत्यानुपूर्व्य, (५०) अगुरुलघु, (५१) परघात, (५२) आतप, (५३) उद्योत, (५४) उच्छ्वास, (५५) प्रशस्त विहायोगति, (५६) प्रत्येक शरीर, (५७) त्रस, (५८) सुभग, (५९) सुस्वर, (६०) शुभ, (६१) वादर, (६२) पर्याप्ति, (६३) स्थिर, (६४) आदेय, (६५) यश: कीर्ति, (६६) तीर्थंकर, (६७) निर्माणनामकर्म, (६८) उच्चगोत्र ।

प्रश्न ९—पाप के कितने भेद हैं?

उत्तर—पाप के दो भेद है—(१) भावपाप और (२) द्रव्यपाप ।

प्रश्न १०—भावपाप किसे कहते हैं ?

उत्तर-—अशुभ भाव करि युक्त जीव को अथवा जीव के अशुभ भाव को भावपाप कहते हैं ।

प्रश्न ११—द्रव्यपाप किसे कहते हैं?

उत्तर—असाता आदि अशुभ फल देने के निमित्तभूत पुद्गलकर्मप्रकृतियों को द्रव्यपाप कहते हैं ।

प्रश्न १२-—पापप्रकृतियां कितनी है?

उत्तर—पापप्रकृतियाँ १०० है—(१-५) पांच ज्ञानावरण, (६-१४) नौ दर्शनावरण, (१५-४२) अट्ठाईस मोहनीय, (४३-४७) पाँच अन्तराय, (४८) असातावेदनीय, (४९) नरकायु, (५०) नरकगति, (५१) तिर्यग्गति, (५२) एकेन्द्रियजाति, (५३) द्वीन्द्रियजाति, (५४) त्रीन्द्रियजाति, (५५) चतुरिन्द्रिय जाति, (५६) न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, (५७) स्वातिसंस्थान, (५८) वामनसंस्थान, (५९) कुब्जकसंस्थान, (६०) हुंडकसंस्थान, (६१) वज्रनाराचसंहनन, (६२) नाराचसंहनन, (६३) अर्द्धनाराचसंहनन, (६४) कीलकसंहनन, (६५) असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, (६६-७३) आठ अशुभस्पर्श, (७४-७८) पाँच अशुभरस, (७९-८०) दो अशुभगंध, (८१-८५) पांच अशुभवर्ण, (८६) नरकगत्यानुपूर्व्य, (८७) तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, (८८) उपघात, (८९) अप्रशस्तविहायोगति, (९०) साधारणशरीर, (९१) स्थावर, (९२) दुर्भग, (९३) दुःस्वर, (९४) अशुभ, (९५) सूक्ष्म, (९६) अपर्याप्ति, (९७) अस्थिर, (९८) अनादेय, (९९) अयश:कीर्तिनामकर्म, (१००) नीचगोत्रकर्म ।

प्रश्न १३—पुण्यप्रकृति ६८ व पापप्रकृति १००, ये मिलकर १६८ कैसे हो गई? प्रकृतियाँ तो कुल १४८ ही है ।

उत्तर—आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गंध, पांच वर्णनामकर्म, ये २० प्रकृतियाँ पुण्यरूप भी होती हैं और पापरूप भी होती हैं, अत: इन बीस को दोनों जगह गिनने से १६८ हुई है, सामान्य विवक्षा करके बीस निकाल देने से १४८ ही सिद्ध हो जाती हैं ।

प्रश्न १४—पुण्यप्रकृतियों में सबसे विशिष्ट और प्रकृष्ट पुण्यप्रकृति कौन है?

उत्तर—तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति समस्त पुण्यप्रकृतियों में विशिष्ट और प्रकृष्ट पुण्यप्रकृति है ।

प्रश्न १५—तीर्थङ्करप्रकृति का लाभ कैसे होता है?

उत्तर—दर्शनविशुद्धि आदि १६ भावनाओं के निमित्त से तीर्थङ्करप्रकृति का लाभ होता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि समस्त प्रकृतियों को हेय अथवा अनुपादेय मानने के कारण इसका लक्ष्य नहीं करता है अर्थात् इसे भी

उपादेय नहीं समझता है ।

प्रश्न १६—पापप्रकृतियों में सबसे अधिक निकृष्ट पापप्रकृति कौन है?

उत्तर—मिथ्यात्वप्रकृति समस्त पापप्रकृतियों में निकृष्ट पापप्रकृति है । मिथ्यात्वप्रकृति के उदय से होने वाले मिथ्यात्व परिणाम से ही संसार व संसार दुःखों की वृद्धि है ।

प्रश्न १७—मिथ्यात्वप्रकृति का लाभ कैसे होता है?

उत्तर—मोह, विषयासक्ति, देव शास्त्र गुरु की निन्दा, कुगुरु कुदेव कुशास्त्र की प्रीति आदि खोटे परिणामों से मिथ्यात्वप्रकृति का लाभ होता है ।

प्रश्न १८—मिथ्यात्व का अभाव कैसे होता है?

उत्तर—मिथ्यात्व का अभाव का मूल उपाय भेदविज्ञान है, क्योंकि भेदविज्ञान के न होने से ही मिथ्यात्व हुआ करता है ।

प्रश्न १९—भेदविज्ञान का संक्षिप्त आशय क्या है?

उत्तर—धन, वैभव, परिवार, शरीर, कर्म, रागादि भाव, ज्ञानादि का अपूर्ण विकास, ज्ञानादि का पूर्ण परिणमन—इन सबसे भिन्न स्वरूप वाले चैतन्यमात्र निजशुद्धात्मतत्त्व को पहिचान लेना भेदविज्ञान है ।

प्रश्न २०—सम्यग्दृष्टि को तो पुण्यभाव और पापभाव दोनों हेय हैं, फिर पुण्यभाव क्यों करता है?

उत्तर—जैसे किसी को अपनी स्त्री से विशेष रांग है । वह स्त्री पितृगृह पर है और उस गांव से कोई पुरुष आये हों, तो स्त्री की ही वार्तादि जानने के अर्थ उन पुरुषों को दान सन्मान आदि करता है, किन्तु उसका लक्ष्य तो निज भामिनी की ओर ही है । इसी तरह सम्यग्दृष्टि उपादेयरूप से तो निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना करता है । जब वह चारित्रमोह के विशिष्ट उदयवश शुद्धात्मतत्त्व के उपयोग करने में असमर्थ होता है तो "हम शुद्धात्मभावना के विरोधक विषय कषाय में न चले जाये व शीघ्र शुद्धात्मभावना करने के उन्मुख हो जायें" एतदर्थ जिनके शुद्ध स्वभाव का विकास हो गया है, जो विकास कर रहे हैं ऐसे परमात्मा गुरुओं की पूजा, गुणस्तुति, दान आदि से भक्ति करता है, किन्तु लक्ष्य शुद्धात्मतत्त्व का ही रहता है । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि के पुण्यभाव हो जाता है ।

प्रश्न २१—क्या इस पुण्य के फल में सम्यग्दृष्टियों का संसार नहीं बढ़ता है?

उत्तर—सम्यग्दृष्टियों के भी पुण्य के फल में मिलता तो संसार ही है, किन्तु संसार की वृद्धि का कारण नहीं होता । सम्यग्दृष्टि मरण करके इस पुण्य के फल में देव होता है तो उस पर्याय में तीर्थङ्करों के साक्षात् दर्शन कर "ये वही देव हैं, वही समवशरण हैं जिसे पहिले सुना था आदि" भावों से धर्म प्रमोद बढ़ाते हैं, और कदाचित् भवों का अनुभव करने पर भी आसक्ति नहीं करते हैं । पश्चात् स्वर्ग से चयकर मनुष्य होकर यथासंभव तीर्थंकरादि पद प्राप्त कर पुण्यपापरहित इस निज शुद्धात्मतत्त्व के विशेष ध्यान के बल से मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न २२—पुण्य व पाप तत्त्वों में क्यों नहीं दिखाये?

उत्तर—पुण्य व पाप का अन्तर्भाव आस्रवतत्त्व में हो जाता है । आस्रव दो प्रकार के होते हैं—एक पुण्यास्रव दूसरा पापास्रव । अत: सामान्य विवक्षा करके एक आस्रव तत्त्व ही कह दिया है ।

प्रश्न २३—यदि आस्रव के ही भेद पुण्य पाप हैं और कोई अन्तर नहीं, तो पदार्थ भी ८ ही कहलायेंगे ९ नहीं?

उत्तर—आस्रव और पुण्यपाप में कथंचित् अन्तर है—आस्रव तो अकर्मत्व से कर्मत्व अवस्था प्राप्त होने को कहते हैं । इसकी तो कियापर प्रधानता है और पुण्य पाप में प्रकृतित्व की प्रधानता है । इसी कारण पदार्थ की संख्या कहते समय पुण्य पाप कहकर भी आस्रव का ग्रहण नहीं हो सकने से आस्रव को भी पदार्थ में गिना तब पदार्थ ९ कहना युक्तियुक्त ही है ।

इस प्रकार सात तत्त्व और नव पदार्थ का व्याख्यान करने वाला यह तृतीय अधिकार समाप्त हुआ ।